ऋषि प्रसाद
मासिक पत्रिका

वर्ष : १८ अंक : १८५
मई २००८ मूल्य : रु. ६-००
वैशाख-ज्येष्ठ वि.सं.२०६५

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)

भारत, नेपाल और भूटान में
(१) वार्षिक : रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २२५/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

पाकिस्तान एवं बांग्लादेश में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	द्विवार्षिक	पंचवार्षिक
भारत, नेपाल व भूटान में	७०	१३५	३२५
पाकिस्तान, बांग्लादेश में	९०	१७५	४००
अन्य देशों में	US$20	US$40	US$80

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

संपर्क पता : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
ऋषि प्रसाद से संबंधित कार्य के लिए फोन नं. : (०७९) ३९८७७७१४, ६६११५७१४.
अन्य जानकारी हेतु : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८, ६६११५५००.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, मोटेरा, जिला गांधीनगर, पीओ. साबरमती-३८०००५. गुजरात
मुद्रण स्थल : विनय प्रिंटिंग प्रेस, ''सुदर्शन'', मिठाखली अंडरब्रीज के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद - ३८०००९. गुजरात
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा, श्रीनिवास

अनुक्रमणिका

सर्वस्तरतु दुर्गाणि...

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

संसार में सुख से जीना है तो व्यवहार के कुछ अंग हैं, वे समझ में आ जायें तो आहा ! आप जीते-जी मुक्तात्मा हो जाओगे, दुःखों से पार हो जाओगे ।

एक - जीयो तो ऐसा जीयो कि जीने की वासना न रहे। खाओ तो इस ढंग से खाओ कि खाने की इच्छा-वासना शांत हो जाय । देखो तो इस ढंग से देखो कि जिसके द्वारा देखा जाता है उसकी याद आने लग जाय । सुनो तो इस ढंग से सुनो कि जिसकी सत्ता से सुना जाता है उस सत्ताधीश की प्रीति और स्मृति जागृत हो जाय, आपका सुनना सार्थक हो जाय ।

ज्ञान व सुखद सत्संग से खुद भी जीयो ठीक ढंग से और दूसरों के जीने में भी सहायक बनो - यह इनसानियत है। खुद भी आतंकित होकर भागते रहे और दूसरों के लिए भी आतंक पैदा करे यह इनसानियत नहीं है ।

आप जीते रहना चाहते हो तो औरों को- जीव-जंतुओं को, कीट-पतंगों को और पेड़-पौधों को जीवन मिले इस प्रकार का अपना व्यवहार रखो। किसी पेड़-पौधे, कीड़े-मकोड़े, जीव-जंतु का जीवन आपके द्वारा कुचला न जाय इसका ख्याल रखो ।

दूसरा - आप मरने से डरो नहीं और दूसरों को डराओ नहीं । आप अमर आत्मा हो । मृत्यु शरीर की होगी, आपकी नहीं होगी। जब भी मरेगा तो शरीर मरेगा, शरीर के बाद भी आप रहोगे । करोड़ों बार मौत हुई फिर भी आप अभी हो । चाहे बिस्त में जाओ, चाहे दोजख में जाओ, चाहे वैकुंठ में जाओ, चाहे फिर आओ लेकिन आप नहीं मरोगे । और कितना भी डरो तब भी मरना है तो डर-डर के क्यों मरना ? मरने से डरनेवाला अमर नहीं होता । मरने से डरनेवाला बार-बार मरता है और जल्दी मरता है । मरने से नहीं डरनेवाला तो एक बार मरता है। मरो तो ऐसे मरो कि फिर मरना न पड़े । अपने अमर आत्मा को जानकर मरो । अपने अहं को परमात्मा में डुबाकर मरो । ऐसे मरो कि आहा ! मौत अपनी न दिखे ।

जो नकारात्मक विचारता है, दूसरे पर दोषारोपण करता है और जिसके स्वभाव में सज्जनता नहीं है, उदारता नहीं है, प्रसन्नता नहीं है वह व्यवहार में सफल नहीं होता । अपने स्वभाव में नम्रता, मधुरता, सज्जनता और उदारता रखनेवाला व्यक्ति अगर साथ में प्रसन्नता मिला देता है तो उसके लिए **असंभव कार्य भी संभव हो जाता है ।** दूसरों की प्रसन्नता आपकी प्रसन्नता बढ़ायेगी । दूसरों के लिए हृदय में द्वेष आपके हृदय को द्वेषी बनायेगा, इसलिए हृदय द्वेष से रहित बनाओ । आप स्वयं द्वेषी न बनो और दूसरों को द्वेष का शिकार न बनाओ। स्वयं किसीके द्वारा बेवकूफ न बनो, न दूसरे को बेवकूफ बनाओ ।

ऐसे श्रद्धालु न बनो कि आपको कोई बुद्धू मानकर पटा ले । ऐसे भगतड़े मत बनो कि हर कोई आप पर रोब झाड़ दे और ऐसे खूँखार भी मत बनो कि जरा-जरा-सी बात में आप अपना रुआब, हेकड़ी दिखाते रहो ।

आप स्वयं समझदार बनो और दूसरों की समझ बढ़ाओ । ये सांसारिक चीजें कब तक, ये सुख-भोग कब तक, यह पद-प्रतिष्ठा कब तक ?

आखिर तो मौत की तरफ ही जा रहे हैं । तो जहाँ मौत नहीं है उसको खुद भी समझो और दूसरों को भी समझने में सहयोग करो ।

जरा-जरा-सी बात में स्वयं दुःखी न होओ और दूसरों को भी दुःखी होने से बचाओ। किसीकी दुःखद अवस्था है या दुःखद घटना है तो 'अरे ! तेरे भाई का ऐसा हो गया, वैसा हो गया...' - ऐसा करके उसका दुःख बढ़ाओ नहीं।

स्वयं दुःख के आघात में दुःखी न होने की कला सीख लो और दूसरों के दुःख के आघात में आपका व्यवहार समस्या-निर्लेप (प्रोब्लमप्रूफ) बने ऐसा प्रयास करो ।

जैसे किसीके बेटे का हादसा (एक्सीडेंट) हो गया तो ऐसी परिस्थिति में आप विवेक से काम लो -

''सेठजी ! एक खबर सुनाता हूँ आपको । खबर जरा ऐसी-वैसी है लेकिन आप बुद्धिमान हैं। संसार में तो हवाई जहाज क्रैश होने पर कई लोग मर जाते हैं, हड्डियाँ भी हाथ नहीं आतीं । दुर्घटना होते ही लोग उसी समय मर जाते हैं । मैं आपको थोड़ी ऐसी खबर सुनाता हूँ लेकिन आप समझदार हैं, दुःख को झेलने की शक्ति है आपमें, ऐसी उम्मीद करके मैं आपको बताना चाहता हूँ ।''

''भाई ! बोलो, क्या बात है ? जल्दी बोलो !''

''नहीं सेठजी ! आप अधीर न हों । आपके बेटे का थोड़ा-सा हादसा हो गया है।''

भले आपको भयंकर दिखे लेकिन उसको बोलो : 'थोड़ा-सा हादसा हो गया है । मरा नहीं है, थोड़ी-सी ही चोट लगी है । दायाँ पैर ठीक है, केवल बायें पैर में ही फ्रैक्चर हुआ है और श्वास उसका अच्छा चल रहा है।' इस तरह से आपने खबर दी तो आपने ईश्वरीय सृष्टि में दुःख की कमी करने का सेवाकार्य किया और सामनेवाले को दुःख में भी दुःख सहने की शक्ति देकर उसकी आपने सहायता की । आपने सुंदर सेवा कर ली ।

जो सेवा में रुचि रखता है उसीका विकास होता है। चाहे भौतिक विकास चाहो, चाहे आध्यात्मिक विकास चाहो; बिना सत्कर्म के, बिना परोपकार के विकास संभव नहीं । पृथ्वी हजार-हजार हाथों से लेती है लेकिन लाख-लाख हाथों से देती है। मेघ सागर से पानी लेता है और मधुर बनाकर देता है । ऐसे ही आप समाज से जो कुछ लेते हैं उसको मधुमय बनाकर समाजरूपी ईश्वर की सेवा में दो तो आपका विकास होता जायेगा । जब संग्रह करके और अपने लिए सोचकर व्यवहार करते हैं तो छोटे दायरे में ही खपकर मर जाते हैं । हमारा उनसे क्या मतलब, हमारा उससे क्या लेना... नहीं, यह सारा संसार अपना एक अंग है । जैसे हाथ का अँगूठा बिगड़ जाय तब भी अपना है और पैर की उँगली बिगड़े तो भी अपनी है, कान बिगड़े तो भी अपना है क्योंकि शरीर के सब अवयव मिलकर एक शरीर है । ऐसे ही पूरा समाजरूपी शरीर मानवता का है । जितना हो सके अपने स्वार्थ का त्याग करके भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करने से सुख का लालच और दुःख का भय कम होने लगता है । जितना सुख का लालच और दुःख का भय घटता है, उतना ही आदमी निर्विकार नारायण के करीब होता है ।

तो आप अपना व्यवहार ऐसा रखो कि आपका व्यवहार तो हो एक-दो-चार दिन का लेकिन मिलनेवाला वर्षों तक आपके व्यवहार को सराहे, आपके लिए उसके हृदय से दुआएँ निकलती रहें।

स्वयं रसमय बनो, औरों को भी रसमय करो। स्वयं अंतरात्मा में सुखी रहो और दूसरों के लिए सुखस्वरूप हरि के द्वार खोलने का पुरुषार्थ करो। स्वयं दुःखी मत रहो, दूसरों के लिए दुःख के निमित्त मत बनो । **न फूटिये न फूट डालिये । न लड़िये न लड़ाइये, मिलिये और मिलाइये ।**

(शेष पृष्ठ ७ पर)

मैं सभीको महान बनाना चाहता हूँ

- पूज्य बापूजी

बच्चों की नजर, उनकी सोच तीन अंगुल तक की होती है । कोई भी स्वादु वस्तु आयी, जीभ के स्वाद के लिए खा लिया । क्या परिणाम आयेगा यह नहीं सोचते ।

बड़ों की नजर, उनका सोच-विचार तीन हाथ तक होता है । पूरे शरीर का ख्याल करके खाते व व्यवहार करते हैं ।

साधक की नजर, उसका सोच-विचार तीन जन्म तक का होता है : इस जन्म का, बीते हुए जन्मों के कर्म काटने का और आनेवाले भविष्य को उज्ज्वल करने का । 'ऐसे कर्म करूँ कि पूर्व जन्मों के संस्कार मिट जायें और यहाँ सुख-दुःख में सम रहूँ, मान-अपमान को सपना समझूँ, परमेश्वर को अपना समझूँ, मरने के बाद किसीके गर्भ में न भटकूँ, आत्मा-परमात्मा को जानकर मुक्तात्मा हो जाऊँ...'- यह साधक की नजर है ।

मैं बच्चों को, बड़ों को - सभीको 'साधक' बनाना चाहता हूँ । सभीको तीन जन्म का ख्याल करनेवाले महान आत्मा के रूप में देखना चाहता हूँ । साधक ही आगे चलकर सिद्ध बनता है ।

सिद्ध की, ब्रह्मवेत्ता की नजर होती है- 'संसार सपना है । जो पहले था, अभी है और बाद में रहेगा, वह आत्मस्वरूप ही अपना है ।'

ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर, कार्य रहे ना शेष ।
मोह कभी न ठग सके, इच्छा नहीं लवलेश ॥
पूर्ण गुरु किरपा मिली, पूर्ण गुरु का ज्ञान ।
आसुमल...
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति चेते,
ब्रह्मानन्द का आनन्द लेते ।

जाग्रत अवस्था आयी-चली गयी, गहरी नींद आयी-चली गयी, सपना आया-चला गया लेकिन जो कभी नहीं गया, वही मेरा आत्मा-परमात्मा है, नित्य स्वरूप है ।

गुरु नानकजी, संत कबीरजी, स्वामी लीलाशाहजी महाराज अपनेको 'आत्मा' जानते थे, वही 'आत्मा' तो तुम भी हो । उन्होंने जान लिया तो ब्रह्मज्ञानी बन गये, तुम्हें जानना बाकी है तो 'साधक' हो और यदि नहीं जानोगे तो संसार में फिर गोते खाने पड़ेंगे ।

जब पाँच साल का ध्रुव भगवान को प्रकट कर सकता है, आठ साल का रामी रामदास हनुमानजी को प्रकट कर सकता है, सुलभा, मदालसा, गार्गी इतनी महान हो सकती हैं तो आप भी अपने आत्मस्वरूप को जानकर महान बन सकते हो ।

वह कौन-सा उकदा है, जो हो नहीं सकता ?
तेरा जी न चाहे, तो हो नहीं सकता ॥
छोटा-सा कीड़ा, पत्थर में घर करे ।
तो इनसान क्या, दिले-दिलबर में घर न करे ?

❑

यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित्
तं रायः सृजति स्वधाभिः ।

'जो मनुष्य अच्छे कार्य के लिए अपना धन समर्पित करता है, दान के सुप्रसंगों में अपने पास रोककर नहीं रखता है, उसीको अनेक धाराओं से विशेष धन प्राप्त होता है ।'

(अथर्ववेद : ७.५०.६)

तुम ईश्वरप्राप्ति के योग्य हो

- पूज्य बापूजी

तुम ईश्वरप्राप्ति के योग्य हो । अपनेको अयोग्य अथवा हीन कभी मत समझो । मान लो, किसी सज्जन आदमी ने एक ब्राह्मण को निमंत्रण दिया । ब्राह्मण उसके घर आया । उसे बैठने को आसन दिया गया, भोजन के लिए उसके सामने थाली तथा पानी का गिलास रखा गया । अब ब्राह्मण यह सोचे कि 'भोजन देगा कि नहीं देगा, खिलायेगा कि नहीं खिलायेगा ?' तो यह बिल्कुल मूर्खों जैसी बात है ।

ऐसे ही भगवान ने हमें मनुष्य-शरीर दिया । श्रद्धा भी हमारे अंदर भरी, संत मिले, गीता, रामायण, उपनिषद्, योगवासिष्ठ आदि ग्रंथ मिले- इस प्रकार की सुंदर व्यवस्था की । समझो, भोजन करानेवाले का घर, थाली, गिलास, आसन सब मिल गया है और कोई व्यंजन भी धर दिया है। अब हम सोचें कि 'खिलायेगा कि नहीं खिलायेगा ?' तो ऐसा सोचना हमारी गलती है । ऐसे ही 'हमको भगवान मिलेंगे कि नहीं मिलेंगे ?' यह सोचना भी गलती है । अपनेको ईश्वरप्राप्ति के अयोग्य मानना ही सबसे बड़ी अयोग्यता है। 'मैंने ये-ये गलतियाँ कीं, मैं ईश्वरप्राप्ति के लायक नहीं हूँ'- ऐसा सोचना बहुत हानिकारक है ।

इसके लिए क्या करें ?

पहली बात-ईश्वरप्राप्ति का इरादा पक्का कर लो । दूसरी बात- भगवान का होकर भजन करो । भजन करते हो वह नहीं फलता है क्योंकि तुम सेठ होकर, निर्बल होकर, बलवान होकर, माई अथवा भाई होकर भजन करते हो । न निर्बल होकर भजन करो और न ही बलवान होकर। वास्तव में तुम सत्-चित्-आनंद के थे, हो और रहोगे, इसलिए तुम सच्चिदानंद परमात्मा के होकर भजन करो ।

जिसने ईश्वरप्राप्ति का इरादा पक्का कर लिया, वह बार-बार दोहराये कि 'मुझे तो सुख-दुःख में सम रहना है ।' भगवान 'गीता' में कहते हैं : **सुखदुःखे समे कृत्वा...** (गीता : २.३८) सम क्यों कहा ? क्योंकि इससे आध्यात्मिक लाभ होगा । तुम क्या करते हो ? भगवान की प्राप्ति हुई-न हुई, चलेगा, संसार की प्राप्ति में अपने को झोंक देते हो । ब्राह्मण भोजन न करे, भाग जाय तो घरवाला क्या करेगा ? ऐसे ही भगवान ने ईश्वरप्राप्ति के निमित्त शरीर दिया है और मनुष्य विकारों में मजा लेने भागे, हेराफेरी, निंदा, कपट में भागे तो भगवान क्या करेंगे ?

वास्तव में भगवान मिले हुए हैं । केवल मिल-मिल के बिछड़नेवाले संसार की सत्यता दिखती है और जो कभी बिछड़ता नहीं है उस परमेश्वर की प्रीति और सत्यता नहीं दिखती है, हमारी इतनी ही गलती है बस! ❑

क्यों दीन है तू हो रहा ? क्यों हो रहा मन खिन्न है ।
क्यों हो रहा भयभीत, तू तो एक तत्त्व अभिन्न है ॥
कारण नहीं है शोक का, तू शुद्ध बुद्ध अजन्य है ।
क्या काम है अब मोह का, तू एक आत्म अनन्य है ॥
तू आप अपनी याद कर, फिर आत्म को तू प्राप्त हो ।
ना जन्म ले मर भी नहीं, मत ताप से संतृप्त हो ॥
जो आत्म सो परमात्म है, तू आत्म में संतृप्त हो ।
यह मुख्य तेरा काम है, मत देह में आसक्त हो ॥

(आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'आत्मगुंजन' से)

बापूजी का सान्निध्य गंगा के पावन प्रवाह जैसा है

(पूज्यश्री के हरिद्वार के सत्संग-कार्यक्रम में स्वामी श्री अवधेशानंदजी के पावन उद्गार ।)

''कल-कल करती इस भागीरथी की धवल धारा के किनारे पर पूज्य बापूजी के सान्निध्य में बैठकर मैं बड़ा ही आह्लादित व प्रमुदित हूँ... आनंदित हूँ... रोमांचित हूँ ।

गंगा भारत की सुषुम्ना नाड़ी है । गंगा भारत की संजीवनी है । श्री विष्णुजी के चरणों से निकलकर ब्रह्माजी के कमण्डलु व जटाधर के माथे पर शोभायमान गंगा त्रैयोगसिद्धिकारक है। विष्णुजी के चरणों से निकली गंगा भक्तियोग की प्रतीति कराती है और शिवजी के मस्तक पर स्थित गंगा ज्ञानयोग की उच्चतर भूमिका पर आरूढ़ होने की खबर देती है । मुझे ऐसा लग रहा है कि आज बापूजी के प्रवचनों को सुनकर मैं गंगा में गोता लगा रहा हूँ क्योंकि उनका प्रवचन, उनका सान्निध्य गंगा के पावन प्रवाह जैसा है ।

वे अलमस्त फकीर हैं । वे बड़े सरल और सहज हैं । वे जितने ही ऊपर से सरल हैं, उतने ही अंतर में गूढ़ हैं । उनमें हिमालय जैसी उच्चता, पवित्रता, श्रेष्ठता है और सागरतल जैसी गम्भीरता है । वे राष्ट्र की अमूल्य धरोहर हैं । उन्हें देखकर ऋषि-परम्परा का बोध होता है । गौतम, कणाद, जैमिनि, कपिल, दादू, मीरा, कबीर, रैदास आदि सब कभी-कभी उनमें दिखते हैं ।

रे भाई ! कोई सतुरु संत कहावे,
जो नैनन अलख लखावे...
धरती उखाड़े, आकाश उखाड़े,
अधर मड़इया धावे ।
शून्य शिखर के पार शिला पर,
आसन अचल जमावे ॥
रे भाई ! कोई सतुरु संत कहावे...

ऐसे पावन सान्निध्य में हम बैठे हैं जो बड़ा दुर्लभ व सहज योगस्वरूप है । ऐसे महापुरुष के लिए पंक्तियाँ याद आ रही हैं : **तुम चलो तो चले धरती, चले अंबर, चले दुनिया...**

ऐसे महापुरुष चलते हैं तो उनके लिए सूर्य, चंद्र, तारे, ग्रह, नक्षत्र आदि सब अनुकूल हो जाते हैं । ऐसे इन्द्रियातीत, गुणातीत, भावातीत, शब्दातीत और सब अवस्थाओं से परे किन्हीं महापुरुष के श्रीचरणों में जब बैठते हैं तो... शास्त्र कहते हैं : **साधुनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ।** साधुओं के दर्शनमात्र से विचार, विभूति, विद्वत्ता, शक्ति, सहजता, निर्विषयता, प्रसन्नता, सिद्धियाँ व आत्मानंद की प्राप्ति होती है ।

देश के महान संत यहाँ सहज ही आते हैं, भारत के सभी शंकराचार्य भी शिविर में आते हैं । मेरे मन में भी विचार आया कि जहाँ सब जाते हैं, वहाँ जाना चाहिए क्योंकि यही वह ठौर-ठिकाना है, जहाँ मन का अभिमान मिटाया जा सकता है । ऐसे महापुरुषों के दर्शन से केवल आनंद व मस्ती ही नहीं बल्कि वह सब कुछ मिल जाता है जो अभिलषित है, आकांक्षित है, लक्षित है । यहाँ मैं करुणा, कर्मठता, विवेक-वैराग्य व ज्ञान के दर्शन कर रहा हूँ । वैराग्य और भक्ति के रक्षण, पोषण व संवर्धन के लिए यह सप्तऋषियों का उत्तम ज्ञान जाना जाता है । आज गंगा अगर फिर से साकार दिख रही हैं तो वे बापूजी के विचार व वाणी में दिख रही हैं । अलमस्तता, सहजता, उच्चता, श्रेष्ठता, पवित्रता, तीर्थ-सी शुचिता, शिशु-सी सरलता, तरुणों-सा जोश, वृद्धों-सा गांभीर्य और ऋषियों जैसा

ज्ञानावबोध मुझे जहाँ हो रहा है, वह यह पंडाल है। इसे आनंदनगर कहूँ याप्रेमनगर ? करुणा का सागर कहूँ या विचारों का समन्दर ? ...लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि मेरे मन का कोना-कोना आह्लादित हो रहा है। आपलोग बड़भागी हैं जो ऐसे महापुरुष के श्रीचरणों में बैठे हैं, जहाँ भाग्य का, दिव्य व्यक्तित्व का निर्माण होता है। जीवन की कृतकृत्यता जहाँ प्राप्त हो सकती है वह यही दर है।

मिले तुम मिली मंजिल,
मिला मकसद और मुद्दा भी।
न मिले तुम तो रह गया मुद्दा,
मकसद और मंजिल भी ॥

आपका यह भावराज्य व प्रेमराज्य देखकर मैं चकित भी हूँ और आनंद का भी अनुभव कर रहा हूँ। मुझे लगता है कि बापूजी सबके आत्मसूर्य हैं। आपके प्रति मेरा विश्वास व अटूट निष्ठा बढ़े इस हेतु मेरा नमन स्वीकार करें।'' ❑

(पृष्ठ ३ 'सर्वस्तरतु दुर्गाणि...' का शेष) अगर ये व्यवहार के अंग समाज स्वीकार कर ले तो अभी समाज की जो दुर्दशा है वह चार महीने में बदल सकती है, चार हफ्ते में भी बदल सकती है, चार दिन में भी बदल सकती है। तत्त्वरूप से देखा जाय तो हम सब एक-दूसरे के भाई ही हैं। एक-दूसरे के सहयोग के बिना हम कहाँ जी सकते हैं? सभीकी आवश्यकता है तो आप अपना हौसला बुलंद रखें और दूसरों का हौसला बुलंद करें। अपनेको संकीर्ण न बनायें। अपने-अपने दुर्ग से, अपनी-अपनी संकीर्णता से सब तर जायें।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्व भद्राणि पश्यतु ।
सर्वसद्बुद्धिमाप्नोतु सर्व सर्वस्तु नन्दतु ॥

'हम सब अपने-अपने दुर्ग से तर जायें। हम सबका मंगल हो। हम सब सद्बुद्धि को प्राप्त हों। हम सब आध्यात्मिक जगत में एक-दूसरे के लिए मददगार हों।'

ॐ माधुर्य... ॐ शांति... ॐ आनंद... ❑

सिद्धि का लक्ष्य

साधना और साध्य का अंतर समझाने के लिए महात्मा बुद्ध भिक्षुकों को एक आख्यान सुना रहे थे -

एक गाँव के कुछ लोग नदी पार करने के लिए नाव पर चढ़े। वे कुल आठ लोग थे, धार्मिक प्रकृति के थे। कुछ देर बाद वे दूसरे किनारे पर पहुँच गये। नाव से उतरकर उन्होंने सोचा कि 'जिस नाव ने हमें नदी पार करायी है, उसने ऐसा करके हम पर एक प्रकार से उपकार किया है। अतः उसे हम कैसे छोड़ सकते हैं?' इसलिए कृतज्ञता ज्ञापित करने के उद्देश्य से उन्होंने तय किया कि वे नाव को सदा साथ रखेंगे।

उन आठों ने नाव को अपने सिर पर उठा लिया और चल दिये। वे बाजारों, सड़कों तथा गलियों से गुजरे। देखनेवाले कहते कि ''हमने नाव पर सवार तो कई लोगों को देखा है लेकिन नाव को लोगों के सिर पर कभी नहीं देखा। ये लोग कैसे मूर्ख हैं जो नाव को सिर पर ढो रहे हैं !''

किंतु वे आठों तो स्वयं को अक्लमंद समझते थे। वे जवाब देते : ''तुम सब तो कृतघ्न हो, तुम्हें कृतज्ञता का क्या पता ? हम जानते हैं अनुग्रह का मूल्य। हम कृतज्ञ हैं, हम आभार-प्रदर्शन करना जानते हैं। इस नाव ने हमें नदी पार करायी है। अब हम इस नाव को अपने सिर पर ढोकर इसके ऋण से उऋण होकर रहेंगे।''

अंत में महात्मा बुद्ध ने शिष्यों को समझाया कि ''नाव तो वास्तव में नदी पार करने के लिए होती है, सिर पर ढोने के लिए नहीं। बहुत-से लोग साधन (साधना) को इस तरह पकड़ लेते हैं कि उसे ही साध्य मानने लग जाते हैं और सिद्धि (आत्मसाक्षात्कार) का लक्ष्य ही भूल जाते हैं।'' आत्मप्रीति, आत्मविश्रांति और आत्मज्ञान भूल जाते हैं तथा साधनों में उलझे रहते हैं। ❑

उत्तम न्याय कैसे करें ?

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

स्वामी रामतीर्थ बोलते थे कि सच्चा कानून तो प्रेम है । प्रेम एक-दूसरे का पोषण करता है। प्रेमी-प्रेमिकावाला प्रेम नहीं, माता-पुत्र का प्रेम, भाई-भाई का प्रेम, गुरु-शिष्य का प्रेम । प्रेम ही असली राज्य करता है । बाकी के जो कानून बनाये जाते हैं, वे अपनी तिजोरी भरने व सँभालने के लिए या अपने अधिकार और अहं की रक्षा करने के लिए बनाये जाते हैं।

व्यवस्था के लिए कानूनों की जरूरत है लेकिन उनमें **'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'** की भावना होनी चाहिए।

न्यायपालिका में न्याय होना चाहिए । उत्तम न्याय कैसे होता है ? यह भी मैंने सुना है शास्त्रों से, महापुरुषों से ।

गवाह और कानून में जो आ गया वही सत्य है और उसीका फतवा दिया जाय ? नहीं, उत्तम न्याय है कि फतवा देने पर इसका क्या परिणाम होगा, इसका विचार किया जाय । समझो, कोई गुनहगार है । उसको कैसे व कितनी सजा देने से वह सुधरेगा और समाज की सुरक्षा होगी ? अथवा कोई फैसला सुना दिया, वह लागू होगा कि नहीं ? लागू होने से समाज का फायदा ज्यादा होगा कि नुकसान ज्यादा होगा ? आपके निर्णय में राग न हो, द्वेष न हो, उससे प्रजा का अहित न हो इसका ख्याल करके ही आप निर्णय करो ।

आप केवल न्यायपालिका में कानूनी ढंग से न्यायाधीश नहीं हो, आप अपने-अपने घर के भी तो न्यायाधीश हो, अपने-अपने इलाके के भी तो निर्णय आपको करने पड़ते हैं, अपने परिवार के निर्णय भी तो करने पड़ते हैं । आपके निर्णय में हित अधिक है कि अहित अधिक है, इसका परिणाम क्या होगा यह नजरिया होना चाहिए ।

धर्म कहता है कि एकादशी करनी चाहिए । लड़का कहता है : 'पिताजी एकादशी नहीं करेंगे तो मैं अन्न-जल का त्याग कर दूँगा ।' लेकिन पिताजी बुजुर्ग हैं, एकादशी के दिन उपवास नहीं रख सकते हैं तो बेटे को धर्मात्मा होने का आग्रह छोड़ देना चाहिए, पिताजी को भोजन देना चाहिए ।

लड़का छोटा है, भूख सहन नहीं कर सकता तो उसको भोजन दो, आप एकादशी का व्रत रखो । आपका शरीर भी रुग्ण है, ऐसा करके कमजोर है तो एकादशी का धर्म, ज्ञान कहता है कि आप उस दिन ठीक-ठाक फल आदि ले लो । फल से गुजारा नहीं होता है तो एकादशी का आदर करो, केवल चावल का त्याग करो, कम खाओ और भजन करो । सनातन संस्कृति में हित की प्रधानता है ।

आप मेरी सेवा मत करो, समाज का भला मत करो लेकिन कम-से-कम अपने जीवन के, शरीर के तो न्यायाधीश बनो । अपने शरीर के साथ, अपने मन के साथ, अपनी बुद्धि के साथ तो न्याय करो! अपने शरीर, मन और इन्द्रियों का तो पहले भला करो ! क्या खाना, कब खाना, कितना खाना, कितना संग्रह करना... नाहक का खाओ नहीं, बिनजरूरी खाओ नहीं, बिनजरूरी बोलो नहीं, बिनजरूरी किसीके लिए बद्दुआ मत दो, बयानबाजी मत करो ।

इस प्रकार स्वार्थरहित, कामनारहित होकर, दूसरों का हित हो यह ध्यान रखकर न्याय करो तो आपको भी आत्मसंतोष मिलेगा । □

क्लेशकारक और क्लेशनाशक संकल्प

- पूज्य बापूजी

संकल्प में सत्य होने की शक्ति है अगर उसमें विकल्प न डालें तो । संकल्प का प्रभाव तीव्र हो और विकल्प का कम हो - ऐसा पुरुषार्थ किया जाय तो संकल्प सफल होते हैं पर वे सफल होने के बाद क्या देंगे यह सोचने की बुद्धि सत्संग से विवेक जगाकर पा लेनी चाहिए । शास्त्र, माता-पिता और गुरु के वचन का अनादर करके व्यक्ति जैसा मन में आया ऐसे संकल्प के पीछे लग गया तो खप जायेगा, तुच्छ हो जायेगा, क्लेशों से घिर जायेगा । माता-पिता, मित्रों या आस-पासवालों की समझ कैसी है ? - इसके प्रति भी सतर्क रहना चाहिए । एक वकील ने अपने बेटे को कहा : बेटा ! न्यायाधीश होकर दिखा तो मैं जानूँ कि मेरा बेटा है ! इंजीनियर ने अपने बेटे को कहा : बेटा ! चीफ (मुख्य) इंजीनियर होकर दिखा । बेटे ने माना और वह चीफ इंजीनियर हुआ । कई जगह उसकी बदलियाँ हुईं और आखिर अपनेको रगड़-रगड़ के सेवानिवृत्त हो गया । तो माता-पिता और अपना संकल्प क्लेशकारक है कि क्लेशनाशक है ? नश्वर की तरफ अंधी दौड़ लगानेवाला है कि शाश्वत की तरफ आकर्षित करनेवाला है । यह बहुत ऊँचा प्रश्न है । इसी पर सारा जीवन, भविष्य तथा मानवता, पशुता एवं असुरता खेल कर रही है ।

'मुझे शादी करनी है, मुझे धन कमाना है, मुझे मकान बनाना है'- ये सारे संकल्प क्लेशकारक हैं। ये अंत में संकल्पकर्ता को क्लेश ही देते हैं, दुःख ही देते हैं क्योंकि न शरीर सदा रहता है, न धन सदा रहता है, न मकान सदा रहता है, न पत्नी व पति का स्वास्थ्य और कामशक्ति सदा रहती है। कामविकार का परिणाम भी क्लेशकारक होता है । किसी लड़के-लड़की को देखकर कामविकार पैदा हुआ तो उसको पाने के लिए क्लेश सहना पड़ता है और कामविकार भोगा तो भी परिणाम में दुःख पैदा हो जाता है । किसीके प्रति मन में शत्रुता आ गयी तो उसका कुछ बिगड़े-न बिगड़े अपने हृदय में तो क्लेश पैदा हो ही जाता है ।

क्लेशकारक संकल्पों से भाई ! दिखने भर को अच्छा लगता है फिर क्लेश ही मिलता है । इन क्लेशकारक संकल्पों को मिटाने के लिए इनको निगलनेवाला क्लेशनाशक संकल्प डाल दो कि मुझे ईश्वर को पाना है, सुख-दुःख, लाभ-हानि में सम रहना है । जो सदा अपने साथ है कभी साथ नहीं छोड़ता उसमें प्रीति करो, उसमें विश्रांति करो । फिर तो तुम्हारे लौकिक कार्य भी सुगमता से होने लगेंगे और परमात्मा आत्मरूप से प्रकाशित भी हो जायेगा । **परमात्मा आत्मरूपेण प्रकाशते ।**

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।

उस एक परम तत्त्व को साध लो न ! सारे क्लेश मिटाने की ताकत इसी संकल्प में है । ईश्वर को पाने या अपने आत्मदेव को पहचानने के सिवाय सारे संकल्प क्लेशकारक संकल्प हैं। इसलिए जीवनकाल में उस परमेश्वर-तत्त्व की प्रीति, उसकी प्राप्ति, उसीमें विश्रांति पा लेनी चाहिए । डॉक्टरी का ज्ञान पा लो, इंजीनियर बनो कोई हरकत नहीं लेकिन पहले अपना ज्ञान पा लो बेटे ! यह बना हुआ तो बिगड़ जायेगा, जो कभी न बिगड़े ऐसे अपने स्वरूप को जान लो । मुख्य काम कर लो फिर गौण काम आसानी से हो जायेंगे ।

हमलोगों ने बेवकूफी क्या की कि स्वप्नरूप

जगत को सच्चा माना, इससे मुख्य काम तो हमने नहीं किया और गौण काम को ऐसी मुख्यता दी कि हम ही खो गये। अब 'मैं इंजीनियर हूँ, मैं डॉक्टर हूँ, मैं वकील हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं पापी हूँ, मैं पुण्यात्मा हूँ, मैं साधक हूँ, मैं बुड्ढा हूँ, मैं जवान हूँ' - बस इसीमें मारे जा रहे हैं। यही पक्का हो गया। भाईसाहब ! जरा-सा तेज दिमागी बुखार आये, आपका इंजीनियरिंग का ज्ञान गायब हो जायेगा लेकिन आप रहोगे। तो आप इंजीनियर नहीं हो लाला, लालियाँ ! वकील नहीं हो, डॉक्टर नहीं हो। आपकी बुद्धि में ये संस्कार पड़े हैं। व्यक्ति का व्यक्तिगत दोष क्या है कि मैं कुछ बनकर दिखाऊँ, मैं यह पाऊँ, मैं ऐसा दिखूँ। इस दोष के कारण सारे संघर्ष, तनाव-खिंचाव, छीना-झपटी सब हो रहे हैं।

आप अपने संकल्पों में क्लेशकारक संकल्प जोड़-जोड़कर कब तक क्लेश भोगोगे ? आप तो अपने संकल्प में क्लेशनाशक संकल्प डाल दो कि 'मैं कौन हूँ - इसे ठीक-से जानूँगा अथवा ईश्वर को पाऊँगा या मोक्ष पाऊँगा। ऐसी स्थिति पाऊँगा कि जहाँ से पतन न हो। है एक-का-एक, नाम अनेक हैं। ऐसा प्राप्त करूँ कि जो छूटे नहीं।'

हम ऐसा पायें कि जहाँ दुःख की दाल नहीं गलती, जहाँ सुख की गुलामी नहीं। जहाँ जन्म और मृत्यु की पीड़ा नहीं। चिंता और भय से चकनाचूर होने का जहाँ नाम नहीं। पराधीनता का जहाँ प्रवेश भी नहीं। हम ऐसे पद को पायें प्रभु !

जेकर मिले त राम मिले,
बीयो सभ मिल्यो त छा थियो।

अगर मिलें तो प्रभु मिलें और सब मिला तो क्या हुआ ? क्लेश ही देगा। बिछुड़े हुए मिले और सुख दिया, वे चले गये तो भी दुःख देंगे। मिले तो भी भय बना रहेगा कि कहीं नाराज न हो जायें, दूसरे के न हो जायें, चले न जायें और वे चले जायेंगे जरूर। जो भी मिला है न, वह जायेगा। ईश्वर के सिवाय किसीसे भी मिले तो अंत में बिछुड़ना ही पड़ेगा। ईश्वर के सिवाय कुछ भी पाया तो वह अंत में सताकर ही जायेगा। पक्का कर लो बस तो क्लेशकारक संकल्पों का महत्त्व कम हो जायेगा। फिर जो आग्रहवाले संकल्प हैं वे तो हट जायेंगे और जो स्वाभाविक हैं भोजन करना है, पानी पीना है, स्नान करना है, पत्नी या पति बीमार है तो उसकी सेवा करके उसको ठीक करना है - ये संकल्प जो कर्तव्यरूप से हैं वे निभा लिये लेकिन इनसे सुख लेने की बेवकूफीवाला संकल्प भीतर मत भरो। सुख देकर आप अपने संकल्परहित परमात्मा में विश्रांति पाओ, आनंद पाओ, शांति पाओ।

वास्तव में स्थूल शरीर आप नहीं हो लेकिन मान लिया कि मैं यह हूँ। इस संकल्प में विकल्प नहीं आ रहा है इसलिए पक्का हो गया है। इन संकल्पों की पोल खोलनेवाला सद्गुरुदेव, वेद भगवान, भगवान श्रीकृष्ण और भगवान श्रीराम का ज्ञान विकल्परूप में डाल दो तो आपको कुछ प्रकाश होगा कि बात तो सच्ची है - मैं शरीर तो नहीं हूँ। सुख आता है, मूर्खता से मानते हैं हम सुखी हैं। दुःख आता है, बेवकूफी से मानते हैं हम दुःखी हैं लेकिन हम तो इन सबको जाननेवाले हैं। जिनको परमात्मा का अनुभव नहीं हुआ है वे सभी अज्ञानी अपने संकल्पों में क्लेशकारक संकल्प डालकर क्लेश भोग रहे हैं लेकिन धरती पर कोई-कोई महापुरुष अवतरित होते हैं या भगवान प्रकट होते हैं जो सबके संकल्पों में क्लेशनाशक संकल्प डाल देते हैं। उसको आप स्वीकार कर लो तथा उसमें विकल्प न आने दो तो साक्षात्कार यूँ हो जाय !

जैसे शुकदेवजी महाराज राजा परीक्षित को राजा-महाराजाओं की कथा सुनाते-सुनाते अंत में कहते हैं कि सब मर-मिट गये, सारस्वरूप एक ब्रह्म

है, परमात्मा है । ऐसा करते-करते शुकदेवजी ने उनके संकल्प में ऐसी दृढ़ता ला दी कि परीक्षित के चेहरे पर परमात्म प्रकाश की चमक आने लगी। सातवें दिन शुकदेवजी महाराज ने आखिरी उपदेश दे दिया कि निश्चय करो - **अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ।** 'मैं ही सर्वाधिष्ठान परब्रह्म हूँ।'

मैं ही सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का हेतु सच्चिदानंद ब्रह्म कृष्णस्वरूप, रामस्वरूप व अनेक रूपों में होकर बैठा हूँ और ये रूप बदलने के बाद भी जो ज्यों-का-त्यों है, मैं वह ब्रह्म हूँ।

परीक्षित के ऊपर शुकदेवजी की कृपा हुई और सातवें दिन परीक्षित समझ गये । आसुमल पर चालीस दिन के बाद पूज्य पूज्य परम पूज्य ब्रह्मस्वरूप मेरे गुरुदेव लीलाशाहजी बापू की कृपा हुई और बात समझ गये । मैं तो कहता हूँ चालीस साल के बाद भी यह स्थिति आ जाय तो भी सौदा सस्ता है क्योंकि चालीस-चालीस करोड़ से भी अधिक जन्म बीत गये फिर भी भटकान मिटी नहीं । चालीस साल में भी यह भटकान मिट जाय तो सौदा सस्ता है ! गुरु की कृपा का बदला हम क्या चुका सकते हैं ? लाखों जन्मों के संसारी संबंधों ने तो नोचा और क्लेशकारक संकल्प दिये पर गुरु ने ही हमारे सात्त्विक संकल्प को अपने संकल्प की हवा देकर पूर्णता का प्रसाद दे दिया है । तो अब हमें क्या करना है ?

क्लेशात्मक संकल्पों की हवा निकाल दो । थोड़ा देख लो, कर लो लेकिन सोचो, 'यह हम हैं ही नहीं ।' अपने मूल स्वभाव में जगो । मनुष्य-जीवन मूल स्वभाव में जगने के लिए मिला है । इस ज्ञान को देनेवाले का जितना आदर करो उतना कम है । इस ज्ञान को जितना महत्त्व दो उतना कम है और यह ज्ञान बाकी के अज्ञानकारक, क्लेशकारक संकल्पों को ऐसे निगल जायेगा जैसे सूर्यनारायण अंधकार को निगल जाते हैं । ईश्वरप्राप्ति की तीव्र इच्छा क्लेशकारक इच्छाओं को निगल जायेगी फिर ईश्वरप्राप्ति की भी इच्छा नहीं रहती। जरा गुरु की दृष्टि मिली, वह इच्छा भी गयी ।

जानना था सोई जाना, काम क्या बाकी रहा ।
अब रहा आराम पाना, काम क्या बाकी रहा ॥

अपने-आपमें, राम में आ जाओ । सारे संकल्प-विकल्प जिस परमात्मा से उठते हैं उस परमात्मा में टिक जाओ, सब ठीक हो जायेगा । □

वास्तविक समझ

- पूज्य बापूजी

एक महात्मा को किसीने कहा : ''महाराज ! ये तुम्हारी निन्दा करते हैं।''

महात्मा बोले : ''अरे, यह तो बड़ी खुशी की बात है। निन्दा तो मेरे शरीर की करते हैं। शरीर के अन्दर जो कुछ भी है उसे हम भी निन्दा की नजर से देखते हैं । नाक की गंदगी अथवा जो भी गंदगी इस शरीर से निकलती है तो क्या उसे प्यार करते हैं ? उसकी तो हम भी निन्दा करते हैं। आत्मा की निन्दा तो कोई कर ही नहीं सकता क्योंकि आत्मस्वरूप से सब एक ही हैं। हम इतनी मेहनत करके लोगों को खुश करते हैं और वह बेचारा मेरी मेहनत के बिना ही निन्दा करके खुश हो रहा है। यह तो मजे की बात है।''

कोई तुम्हारी निन्दा करता हो तो अपनेको कोसो मत। हाँ, अगर तुम्हारी गलती है और उस कारण वह तुम्हारी निन्दा करता है तो पहले तुम अपनी गलती निकालो। गलती तुम्हारी नहीं है और किसीके द्वारा निन्दा किये जाने पर तुम अपने हृदय को व्यथित करने लगे, इससे नुकसान तो तुम्हारा ही हुआ। अपनी समझ का उपयोग करो और अपने चित्त को प्रसन्न रखो ।

लोकेश्वर भी ऐसे भक्तों को प्यार करता है

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

हरिद्वार का कुंभ महापर्व पूरा हुआ और एक संत ने स्वप्न देखा कि प्रयागराज, रुद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग, गंगा मैया और अन्य सभी तीर्थ आपस में गोष्ठी कर रहे हैं कि 'कुंभ-स्नान का थोड़ा-बहुत फल तो सभी ले गये हैं लेकिन सबसे अधिक पुण्य इस समय किसने पाया है ?'

प्रयागराज ने कहा : ''अधिक-से-अधिक पुण्य किसे मिला है, यह मुझे पता है।''

देवप्रयाग ने कहा : ''मैं भी जानता हूँ उसको। अधिक-से-अधिक पुण्य रामू मोची के हिस्से गया है। वह केरल प्रदेश के दीवा गाँव में रहता है।''

गंगाजी ने कहा : ''रामू मोची ने तो मुझमें स्नान नहीं किया है। वह मेरे में स्नान करने हरिद्वार नहीं आया तो देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग और कर्णप्रयाग कहाँ पहुँचा होगा ?''

तब तीर्थों ने कहा : ''वह तीर्थों में तो स्नान करने नहीं आया लेकिन तीर्थस्नान का पूरा फल उसे मिला है। वह मोची है बेचारा। रोज दो-दो पैसे बचाता था कुंभ-स्नान करने आने के लिए।''

इतने में उन संत की आँख खुल गयी। वे महापुरुष सोचने लगे कि 'यह भ्रांति है कि सत्य है ? प्रभातकाल का स्वप्न है तो यह झूठा नहीं होगा। इसकी खोजबीन करनी चाहिए।'

संतपुरुष निश्चय के पक्के होते हैं। चल पड़े केरल प्रदेश की ओर। पूछते-पूछते, यात्रा करते-करते स्वप्न में निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचे तो स्वप्न की बात सच निकली। संत लोग कैसी खोज करते हैं !

संत ने पूछा : ''तेरा नाम रामू है ?''

रामू बोला : ''हाँ, महाराज !''

''तू कुंभ महापर्व में गंगा-स्नान करने गया था ?''

रामू की आँखों से हर्ष के आँसू टपके। बोला : ''महाराज ! मैं जूते बनाकर बेचता हूँ। साल भर दो-दो पैसे इकट्ठे करके कुंभ में जाना चाहता था किंतु मेरी पत्नी माँ बननेवाली है। उसको मेथी की सब्जी की सुगंध आयी और उसे सब्जी खाने की बड़ी इच्छा हुई। गर्भवती महिला की इच्छा यदि शास्त्रीय हो तो उसे उसी समय पूरा कर देना चाहिए। मैं पड़ोस में, जहाँ से मेथी की सब्जी की सुगंध आ रही थी, वहाँ सब्जी माँगने गया।

पड़ोसिन ने कहा : 'सब्जी तो बेशक ले जाओ पर यह सब्जी आपके खाने लायक नहीं है। पिछले सात दिनों से पति गरीबी के कारण कुछ भी लाने में सक्षम नहीं हैं। हमलोग भूखे हैं, हमारे प्राण जा रहे हैं। कहीं से कुछ मिल जाय, इस चक्कर में पति इधर-उधर घूमते हुए श्मशान की तरफ गये। किसीने अपने पूर्वजों को प्रसन्न करने के लिए मेथी की सब्जी, थोड़ा आटा और थोड़ा सीधा रखा था। वह चुपचाप उठाकर लाये हैं। इसीसे हमलोग प्राणों को आहुति देंगे।'

महाराज ! उनकी वह हालत देखकर मेरा अंतरात्मा पिघल गया। मैंने सोचा, 'आज पत्नी को मेथी की सब्जी की सुगंध लाकर परमात्मा ने मेरा मार्गदर्शन किया है। पड़ोस में व्यक्ति भूख से छटपटा रहे हैं, तड़प रहे हैं, फिर मैं तीर्थ करने क्या जाऊँ ? मेरे जो बारह रुपये थे (अभी के छः सौ रुपये मान लो), उनका सीधा-सामान लाकर

मैं पड़ोसी के घर में चुपके-से रख आया। महाराज ! मैं आपको सत्य कहता हूँ, स्वप्न में मुझे प्रयागराज, देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग तथा गंगा मैया के दर्शन हुए और उनमें चर्चा हो रही थी कि 'सबसे ज्यादा पुण्य किसने पाया ?' तब देवप्रयाग ने कहा कि रामू मोची तीर्थ में स्नान करने तो नहीं आया लेकिन किसीके हृदय में हृदयेश्वर भूखा-प्यासा तड़प रहा था, उसकी सेवा का तीर्थ उसने किया, इसलिए तीर्थ का सबसे ज्यादा फल उसके हिस्से जाता है। महाराज ! मैं गद्‌गद हो गया। उस दिन से बड़ी प्रसन्नता रहती है। सभी लोग तथा ग्राहक भी मुझसे मिलकर प्रसन्न होते हैं। सभी लोग मेरे प्रति बड़ा स्नेह व सद्‌भाव रखते हैं।''

महाराज ने कहा : ''भैया ! लोग तो प्यार करते ही हैं, साथ ही लोकेश्वर भी ऐसे भक्तों को प्यार करते हैं जो भगवान के नाते कर्म तो कर लेते हैं लेकिन बदले में कुछ नहीं चाहते और मन में अभिमान नहीं आने देते।

वैष्णव जन तो तेने रे कहिये
जे पीड़ पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तोये
मन अभिमान न आणे रे ॥''

दूसरे की पीड़ा हरने से जो आनंद, पुण्य और तीर्थाटन होता है वह तो अवर्णनीय है !

मुझे भी ऐसे कई चमत्कारिक अनुभव हुए हैं। कहीं भी जब धन से, स्वास्थ्य से, सत्ता से या आध्यात्मिक ज्ञान की दृष्टि से कोई गरीब देखता हूँ और उसकी सेवा करता हूँ तो मेरे हृदय में ऐसा आनंद आता है कि उसकी महिमा समझ में तो आती है पर समझायी नहीं जाती।

हरिद्वार में बड़ी उच्चकोटि के एक ब्रह्मज्ञानी मेरे मित्रसंत थे। मैं सुबह उनके पास जाता। वहीं पर ध्यान व सत्संग-चर्चा करता। एक सुबह मैं जा रहा था तो रास्ते में एक छोटा ढाबा था। उस ढाबे का मजदूर झाड़ू लगा रहा था। ग्राहक खाते-खाते जो कच्ची-पकी फेंक देते हैं उसे बाहर कर रहा था। एक बेचारा गुदड़ी ओढ़े हुए आया और धड़ाक्-से उस फेंकी हुई खाद्य सामग्री को उठाकर खाने लगा। मैंने सोचा कि कितना भूखा होगा ! मैंने कुछ खरीदकर उस गरीब को खिलाया तो उस समय भी ऐसा हुआ कि 'अहा ! आज तो गंगा-स्नान किया ! सब तीर्थों का स्नान हो गया !!'

स्वार्थ के कर्म कंगाल बनानेवाले होते हैं। जब निःस्वार्थ कर्मों की पूँजी होती है तो उस हृदयेश्वर के साथ हररोज, हरदम बातचीत होती है।

दिले तस्वीरे है यार !
जब गर्दन झुका ली, मुलाकात कर ली।

आप कर्मों में निष्कामता ले आओ, निरहंकारिता ले आओ, प्रभु की प्रीति के लिए कर्म करो। भगवान कहते हैं :

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

'हे धनंजय ! तू आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्यकर्मों को कर, समत्वभाव ही योग कहलाता है।' **(गीता : २.४८)**

आप कर्म को योग बना दो। कर्म के फल के संग से आप लेपायमान न होओ। आप आसक्ति का त्याग करके माता की, पिता की, कुटुम्बी की सेवा करो लेकिन परिवार के लोग मुझे सुख दें यह अपेक्षा छोड़ दो। 'पत्नी मुझे सुख दे, पति मुझे सुख दे, पड़ोसी मुझे सुख दे...'- ऐसा सोचकर आप सुख के भिखारी मत बनो। सुख की परवाह किये बिना शास्त्र-मर्यादा के अनुसार दूसरों के मंगल के लिए जो भी कर्तव्य है, उसमें लग जाओ, मंगलस्वरूप परमात्मा आपके हृदय में आनंद-आनंद प्रकटायेगा। उसकी मंगलमयी स्मृति और प्रीति अद्‌भुत है, अनुपम है ! ❑

साधक और सज्जन

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

दो तरह के लोग होते हैं । एक तो साधक और दूसरे सज्जन । सज्जन व्यक्ति बढ़िया हैं लेकिन सज्जन का उद्देश्य है सात्त्विक सुख लेना, सज्जन का उद्देश्य है किसीको दुःख न देना । जबकि साधक का उद्देश्य सात्त्विक सुख नहीं, किसीको दुःख देना भी नहीं लेकिन परमात्मा को पाना है - यह होता है । साधक आप अमानी रहेगा, दूसरों को मान देगा, अपमान को पचा लेगा। सज्जन खुद मान चाहेगा, दूसरों को भी मान देगा लेकिन अपना अपमान हजम नहीं करेगा।

साधक का उद्देश्य साध्य होता है, ईश्वरप्राप्ति होता है । ईश्वरप्राप्ति का उद्देश्य हो जाय तो ईश्वर बहुत जल्दी मदद करता है । साधक इस विश्वास के साथ पहले की की हुई गलतियों को तुरंत छोड़कर ईश्वरप्राप्ति के मार्ग पर चलने में सफल हो जाता है। **क्षिप्रं भवति धर्मात्मा ।** (गीता : ९.३१) और साधक भगवान के इन वचनों को समझता है :

सब मम प्रिय सब मम उपजाए ।

सभी मेरे प्यारे हैं और सभी मेरे पैदा किये हुए हैं । यह बात साधक समझेगा कि हम सभी एक ही पिता की सन्तानें हैं । सज्जन बोलेगा : 'ये अच्छे लोग हैं, मदद करो । ये तो दुर्जन लोग हैं, दुष्टों को छोड़ो ।' लेकिन साधक सोचेगा दुर्जन का भी भला हो । उसको समझा-बुझाकर सत्संग में ले जायेगा । दुर्जन को भी दो अच्छे वचन सुनायेगा, कुछ अच्छी बातें बतायेगा ।

दुर्जनो सज्जनो भूयात् ।

साधक होगा तो दुर्जन को सज्जन बनायेगा, सज्जन को साधक बनायेगा । साधक को शांति की तरफ ले जायेगा, शांत चित्तवाले को आत्मज्ञान की तरफ ले जायेगा । इसलिए कि साधक का उद्देश्य ईश्वरप्राप्ति होता है । सज्जन का उद्देश्य दुर्जन से अच्छा होता है लेकिन साधक का उद्देश्य सबसे ऊँचा होता है ।

चातक मीन पतंग जब पिया बिन नहीं रह पाये ।
साध्य को पाये बिना साधक क्यों रह जाये ?

साधक हेराफेरी नहीं करेगा, दूसरे की वस्तु नहीं हड़पेगा । माल हड़प तो बेईमान करते हैं । मंदिर में, आश्रम में, धर्म की जगह पर रहकर भी बेईमान बेईमानी करते हैं । सज्जन बेईमानी नहीं करेगा लेकिन साधक तो उद्देश्य साधना रखेगा । सज्जन से भी बहुत ऊँचा होता है साधक । साधक तो दूसरे का लेने में डरेगा, देने में खुश होगा । बेईमान तो अपना छुपायेगा, दूसरे को बोलेगा कि 'हमारा तो हमारे बाप का है, तुम्हारे में भी हमारा हिस्सा है।' 'हमारा तो हमारा, तुम्हारा तो तुम्हारा'- ऐसे लोग सज्जन होते हैं । 'तुम्हारा तो तुम्हारा है ही, मेरा भी तुम्हारा है। तू चल न कथा में मेरे भाई ! तुम्हारी सात पीढ़ियाँ तर जायेंगी ।'- यह साधक का उद्देश्य होता है । साधक तन से, मन से, विचार से, बुद्धि से, भावना से सब लोग सत्संगी हो जायें यह उद्देश्य रखता है। साधक को सत्संग से जो फायदा होता है, वह दुनिया के किसी भी कर्म से नहीं होता।

साधक सत्संग करेगा, करवायेगा, दूसरों को सत्संग में ले जायेगा । अपने पास पैसे न होने पर उधार लेकर, कर्ज लेकर भी सत्संग में आयेगा,

दूसरों को भी ले जायेगा । नौकरी में आमदनी नपी-तुली है, फिर भी 'ऋषि प्रसाद' के सदस्य बनाने में आधे पैसे अपने लगाकर साधक सदस्य बना देता है, सत्साहित्य दिलाता है। सामनेवाला बोलेगा : 'अरे ! इतना पैसा मैं नहीं देता' तो साधक बोलेगा : 'कोई बात नहीं, पैसे मैं देता हूँ । आधा तेरा, आधा मेरा पैसा लगाकर सत्साहित्य तू पूरा ले जा ।' ऐसा होता है साधक ! सज्जन बोलेगा : 'भाई ! तू कर न, तेरा भला होगा ।' और सामनेवाला नहीं करेगा तो बोलेगा : 'मरो, मैं क्या करूँ ?' लेकिन साधक बोलेगा : 'मरो नहीं ।'

सब मम प्रिय सब मम उपजाए ।

सब भगवान के प्यारे हैं । बेटा लोफर हो, आवारागर्द हो, झगड़ाखोर हो, माता-पिता का नहीं मानता हो फिर भी बेटा तो माता-पिता का ही है । ऐसे ही साधक हो चाहे सज्जन हो, चाहे और भी कुछ हो लेकिन है तो उस एक ही आत्मदेव का अंश। कभी-न-कभी तो चलेगा भगवान के रास्ते। सज्जन में से धर्मात्मा बनेगा लेकिन साधक में से महात्मा बनेगा और यदि ईश्वरप्राप्ति का उद्देश्य बना ले तो साधक में से सिद्धपुरुष बन जायेगा ।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा ।

ईश्वरप्राप्ति का उद्देश्य हो जाय तो जल्दी धर्मात्मा बन जायेगा । धर्म-कर्म करने से आदमी धर्मात्मा नहीं बनता है लेकिन ईश्वरप्राप्ति का उद्देश्य बनाने से धर्मात्मा बन जायेगा । साधक से गलती होती है तो उसका हृदय जलता है, छटपटाता है और वह संकल्प करता है कि दुबारा गलती नहीं करूँगा। साधारण आदमी होता है तो गलती भी करेगा, साधन भी करेगा लेकिन साधक गलती करेगा नहीं, अगर उससे गलती होगी तो फिर गलती को रहने नहीं देगा । इतना समझ जाओ और लग जाओ तो भी जीवन सफल हो जाय । □

ऋषि प्रसाद

ऋषि प्रसाद ही पत्रिका का, धर दिव्य स्वरूप ।
बोध कराये तत्त्व का, पावन परम अनूप ॥
पथ प्रशस्त करती सुखद, देती उत्तम ज्ञान ।
कलियुग में यह पत्रिका, सचमुच है वरदान ॥
प्रेरित करती है हमें, करें सदा उपकार ।
मन के जीते जीत है, मन के हारे हार ॥
अपने जैसे जीव सब, दें न किसीको क्लेश ।
मिलें सभीसे प्रेम से, बापू का संदेश ॥
करें न ऐसा काम कुछ, जो दुःख का हो हेतु ।
'ऋषि प्रसाद' ही विश्व में, है जनहित सेतु ॥
इसकी वाणी में निहित, जनोद्धार संकल्प ।
द्वार खोलती मोक्ष के, करती कायाकल्प ॥
हम सब सत्संगी बनें, निर्मल बनें विचार।
छिद्र न देखें अन्य के, अपना करें सुधार ॥
यह भवसागर है अगम, इसका आर न पार ।
सद्गुरु के उपदेश से, हो जाय बेड़ा पार ॥
करनी यदि हो ठीक तो, सुखप्रद हो परिणाम ।
हृदय की विशालता से, मिले सुख-शांति-विश्राम ॥
'ऋषि प्रसाद' देती हमें, शिक्षा यह अनिवार्य ।
जो पीड़ा दे अन्य को, करें न ऐसा कार्य ॥
मानव-जीवन है मिला, बड़े भाग्य से बन्धु !
हरि-ज्ञान जलयान से, तर लें संसृति-सिन्धु ॥

- एक सज्जन साधक

महावेदांती श्री तोतापुरीजी महाराज

जिस सत्यस्वरूप परमात्मा के उदार एवं माधुर्यमय रूप का थोड़ा-सा आभास मिलने पर भी मुग्ध जीव क्षण भर के लिए अपनेको कृतकृत्य समझ लेता है, जिसे न पाने तक उसको किसी प्रकार भी तृप्ति नहीं होती और न उसे पूर्ण शांति मिलती है, वासनाबद्ध बहिर्मुख जीव को उसी अमृतधारा का पान कराकर परमात्मतृप्ति और परमात्मा की पूर्ण शांति का अनुभव कराने के लिए युग-युग में मर्त्य भूमि पर संत-महापुरुष सद्गुरु के रूप में अवतार लेते हैं।

'हठयोगप्रदीपिका' (४.९) में कहा गया है : **दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना।** सद्गुरु की करुणा-कृपा बिना सहजावस्था दुर्लभ है।

सद्गुरु के अतिरिक्त चौदह भुवनों में और कोई नहीं है जो कि परमानंद की प्राप्ति का उपाय जानता हो। समस्त भारत में आध्यात्मिक चेतना का प्रसार करनेवाले ऐसे ही एक महापुरुष हो गये स्वामी श्री रामकृष्ण परमहंस के सद्गुरु महावेदांती श्री तोतापुरीजी महाराज।

तोतापुरीजी का पूर्वाश्रम :

विशेषकर संन्यासियों से उनके पूर्वाश्रम के नाम-धाम-गोत्रादि पूछने पर वे प्रायः उनका उल्लेख नहीं करते। श्री रामकृष्णदेव कहा करते थे : 'संन्यासियों से इन बातों को पूछना तथा इस संबंध में उनका उत्तर देना - दोनों ही शास्त्रविरुद्ध हैं।' इसीलिए श्री रामकृष्णदेव ने उनसे इस संबंध में कभी कुछ पूछा नहीं था।

अतः तोतापुरीजी के जीवन के विषय में संपूर्ण जानकारी उपलब्ध नहीं है परंतु कभी प्रसंगवश सहज में उपदेश के रूप में उनके विषय में स्वयं तोतापुरीजी से रामकृष्णदेव को विदित हुई बातों को एवं अन्य प्राचीन संन्यासियों के माध्यम से प्राप्त जानकारियों को सँजोकर उनके महान जीवन-चरित्र को वर्णित करने का यह एक अल्प प्रयास ही कहा जा सकता है।

माता-पिता की मनौती :

भारत के उत्तर-पश्चिम भाग में एक निष्ठावान हिन्दू परिवार में बालक 'तोता' (जन्म के समय दिया गया नाम) का जन्म हुआ था। उनका शरीर पंजाबी था ऐसी जानकारी भी मिलती है। उनका निश्चित प्राकट्य स्थान एवं समय सदा के लिए एक रहस्य ही बना रहा। जब वे नितांत बच्चे थे, तभी से उन्हें एक मठ में भेज दिया गया था। बहुत वर्षों तक कोई संतान न होने से उनके माता-पिता ने मनौती मानी थी कि अपने प्रथम पुत्र को वे संन्यासी बनने के लिए भगवान को समर्पित कर देंगे। उस समय भारत के उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में ऐसी प्रथा प्रचलित थी। तदनुसार बालक को एक बड़े मठ के महंत, जो प्रसिद्ध योगी थे, उनको समर्पित कर दिया गया। महंत की प्रसिद्धि इतनी थी कि उनके सम्मान में वहाँ पर प्रति वर्ष एक मेला लगता था और लोग मठ के साधुओं को वस्तुएँ भेंट में देते थे।

यह संप्रदाय श्री शंकराचार्य द्वारा स्थापित 'दशनामी' संप्रदाय के अंतर्गत 'पुरी' संप्रदाय से संबंधित था। इनके सदस्य पूर्णतया नग्न रहा करते थे, इसलिए 'नंगा' या 'नागा' कहलाते थे। पंजाब में लुधियाना के समीप स्थित इस मठ का अनुशासन अत्यंत कठोर था। यहाँ संसार

से वीतराग हो साधक कड़े नियमों का पालन करते, जिनमें अपरिग्रह और कठोर शारीरिक श्रम शामिल थे।

तोतापुरीजी ने श्री रामकृष्ण को उस मठ एवं वहाँ साधकों से करायी जानेवाली साधनाओं के संबंध में बताया था कि 'उनके दल में सात सौ नागा रहते थे। श्रीगुरुदेव के आदेशानुसार वेदांतनिहित सत्यों को अपने जीवन में अनुभव करने के निमित्त वे नित्य ध्यानादि का अनुष्ठान किया करते थे। जिन लोगों ने ध्यान सीखना प्रारंभ ही किया था, उन्हें गद्दी पर बैठाकर ध्यान कराया जाता था क्योंकि कठिन आसन पर बैठकर ध्यान करने से उनके पैरों में दर्द होना स्वाभाविक था और इससे उनका अनभ्यस्त मन ईश्वर में संलग्न न होकर शरीर की ओर झुकने लगता। तदनंतर ज्यों-ज्यों ध्यान जमने लगता, त्यों-त्यों उन लोगों को अधिक कठिन आसन पर बैठाकर ध्यान कराया जाता था। अंत में केवल चर्मासन तथा जमीन पर बैठकर उन्हें ध्यान करना पड़ता था। भोजन आदि के संबंध में भी इसी प्रकार नियमों का पालन करना अपेक्षित था। सभी शिष्यों को क्रमशः नग्न रहने का अभ्यास कराया जाता था। मानव जन्म से ही लज्जा, घृणा, भय, जाति, कुल, शील, मान इत्यादि में आबद्ध रहता है, इसलिए एक-एक करके इनको त्यागने की शिक्षा दी जाती थी। इसके बाद ध्यानादि में मन अच्छी तरह से संलग्न हो जाने पर सर्वप्रथम उन्हें अन्य साधुओं के साथ, तदनंतर अकेले तीर्थपर्यटन करना पड़ता था। नागाओं में इस तरह के नियम प्रचलित थे।'

गुरुदेव द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर अग्रसर :

इस प्रकार तोतापुरीजी का लालन-पालन संसार-प्रपंच से दूर सर्वत्यागी साधुओं की स्नेहमय देखरेख में हुआ था। पूर्वजन्म के पुण्य-संस्कार के फलस्वरूप तोतापुरीजी का मन सरल, विश्वासी तथा श्रद्धासंपन्न था। उनके मस्तिष्क और हृदय की विशेषताओं ने महंत का ध्यान आकर्षित कर लिया, अतः वे उन पर विशेष ध्यान देते। उनकी तीव्र मेधा ने भी उन्हें अल्प समय में शास्त्रों में पारंगत होने में सहायता की। जब वे योग्य प्रतीत हुए तब उन्हें अद्वैत साधना में दीक्षित कर दिया गया। संन्यास धर्म में आनुष्ठानिक रूप से प्रविष्ट होने पर वे 'तोतापुरीजी' के नाम से परिचित हुए। अब तोतापुरीजी को उन कठोर साधनाओं में लगा दिया गया, जिनके पीछे युगों के अनुभवों की मान्यता रही है।

उनके गुरुदेव उन्हें जैसा उपदेश देते थे, उनका मन भी ठीक-ठीक उसे धारण कर सदा तदनुसार आचरण किया करता था। छल-कपट से रहित मन के कारण संभवतः उन्हें कभी भी विशेष कष्ट उठाना नहीं पड़ा था। उनका सीधा-सादा मन सरलरूप से ईश्वर पर विश्वास-स्थापन कर गुरुदेव के द्वारा निर्देश किये हुए गंतव्य पथ पर धीरता के साथ अग्रसर हुआ था एवं आगे बढ़ते हुए उन्होंने एक बार भी पीछे मुड़कर संसार के पाप-प्रलोभन आदि की ओर अतृप्त लालसा से नहीं देखा। अपने पुरुषार्थ, उद्यम, आत्मनिर्भरता तथा आत्मविश्वास को ही तोतापुरीजी ने सब कुछ मान रखा था। आचार्य शंकर ने 'विवेकचूड़ामणि' नामक ग्रंथ के प्रारंभ में कहा है : 'संसार में मनुष्यत्व, ईश्वरप्राप्ति की इच्छा तथा सद्गुरु का आश्रय - इन तीन वस्तुओं को एक साथ प्राप्त करना अत्यंत ही दुर्लभ है, भगवान के अनुग्रह के बिना यह संभव नहीं।' तोतापुरी ने सौभाग्यवश केवल इन तीनों वस्तुओं को ही प्राप्त नहीं किया अपितु इनके यथार्थ प्रयोग से मानव-जीवन के चरम उद्देश्य मुक्ति-लाभ करने में भी वे समर्थ हुए। **(क्रमशः)**

संत-संगति : कल्याण का मूल

संसार में यदि किसीको बंधनों से, दुःखों से मुक्त रहना हो तो सर्वोपरि एक ही उपाय है - संत-संगति । 'श्री रामचरितमानस', 'श्रीमद् भागवत' तथा अन्य अनेक पारमार्थिक ग्रंथों में साधु-समागम, संत-सुसंग की बहुत विस्तारपूर्वक महिमा वर्णित है । महर्षि वसिष्ठजी ने भगवान श्री रामचन्द्रजी से कहा है :

यः स्नातः शीतसितया साधुसंगतिगंगया ।
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः ?

'जो साधुसंगतिरूपी शीतल निर्मल गंगा में स्नान करता है, उसे किसी तीर्थ, तप, दान और यज्ञ से क्या काम है ?'

(श्री योगवासिष्ठ महा. : २.१६.१०)

जावे मथुरा द्वारिका, या जावे जगन्नाथ ।
सतसंगति हरि भजन बिन, कछू न आवै हाथ ॥

यदि तुम संत-संगति का महत्त्व समझते हो तो जिसे स्नेह करते हो, जिसका हित चाहते हो उसे संत-संगति की प्रेरणा देते रहो । अपनी संतान को सुखी जीवन बिताने के लिए तुम पूर्ण विद्वान, धनवान, बलवान और क्या-क्या बना देने का प्रयत्न करते हो किंतु भगवद्कृपा से प्राप्त संत-सान्निध्य यदि न मिला तो सब व्यर्थ चला जायेगा क्योंकि सभी बलों की सार्थकता सत्संग से प्राप्त सद्विवेक से ही होती है ।

सब प्रकार के सुख हों किंतु विवेक-ज्ञान के न होने से सब सुखों का अंत दुःखों में ही होगा । किसी प्रकार का सुख न हो किंतु विवेक-ज्ञान हो जाय तो सभी दुःखों का अंत आनंद में होगा ।

किसको क्या पता है कि कहाँ, किस दिन, क्या दुर्घटना होनेवाली है ? नित्य ही अपने चारों ओर प्रत्येक मनुष्य किसीको गर्व से हँसते, किसीको रोते, किसीको पाते और किसीको खोते देखता है । सुखी भी भ्रमित है क्योंकि अज्ञानवश न जाने क्या-क्या समेट रहा है और दुःखी भी भ्रमित है, वह भी एक पाप का फल भोगकर उऋण होने से पहले ही दूसरे कई पाप करके पाप-राशि बढ़ा रहा है । केवल विवेकी जो कि संत का संगी है, भ्रमित नहीं है । वही दुःख-सुख के बंधन से अलग रह सकता है ।

वह बहुत भाग्यवान है जो अल्पावस्था में बुद्धि जागृत होने के साथ सत्संगी हो जाता है । वे नर-नारी बहुत पुण्यवान हैं जो गृहस्थी में प्रवेश के पहले ही संत-संगति में उससे निकलने और बचने का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ।

मति कीरति गति भूति भलाई ।
जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ ।
लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥

'उनमें से जिसने जिस समय, जहाँ कहीं भी, जिस किसी यत्न से बुद्धि, कीर्ति, सद्गति, विभूति (ऐश्वर्य) और भलाई पायी है, वह सब सत्संग का ही प्रभाव समझना चाहिए । वेदों में और लोक में इनकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है ।' **(श्री रामचरित. बा.कां. : २.३)**

जीवन में गति तथा सद्गति अन्य साधनों से भी होती दिखती है लेकिन परम गति तो संत-सान्निध्य से ही सुलभ हो सकती है ।

यदि तुम अभी तक साधनाभ्यास में कहीं-कहीं नियम-पालन में आलस्य-प्रमाद करते हो, यदि संत-सद्गुरु के प्रति अन्य संबंधियों की भाँति प्रगाढ़ प्रीति में कुछ कमी है तो समझ लो कि

अभी गुरुदेव से तुम्हारा आन्तरिक संबंध नहीं हो सका है ।

परम पावन ज्ञानस्वरूप संत-सद्गुरु के दर्शन बाहरी नेत्रों से नहीं होते बल्कि श्रद्धा की दृष्टि से होते हैं । जितनी ही शुद्ध एवं सात्त्विक श्रद्धा होगी, उतना ही प्रगाढ़ तथा निकट संबंध होगा । पूर्ण श्रद्धालु ही गुरु के आज्ञापालन में तत्पर रह सकता है । अश्रद्धालु, अभिमानी की गुरु व संत के निकट आकर भी उन्नति नहीं हो सकती । वे श्रद्धालु-हृदय बड़े पुण्यवान हैं जो स्वयं परमार्थ-लाभ के लिए संतों का संग करते रहते हैं और अपने समीपवर्ती जनों को भी प्रेरित करके अपने चारों ओर दैवी सम्पत्ति का प्रसार करते रहते हैं ।

सत्संगति से वंचित, श्रद्धा से रहित लाखों धनवान, जनवान, बलवान, विद्यावान मनुष्य अंत में मोही, लोभी, अभिमानी होने के कारण घोर कष्ट भोगते हैं, विवेक-ज्ञान न होने के कारण ही अनेकों पाप, अपराध करते रहते हैं । वे जीते रहना चाहते हैं किंतु जीवन का अर्थ या उसका सदुपयोग नहीं जानते । सुख के लिए सब कुछ करते रहते हैं परंतु सुख का यथार्थ ज्ञान नहीं रखते । लाभ की सिद्धि के लिए क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, हिंसापूर्ण कर्म करते हैं, फिर भी अपनी महान हानि को नहीं समझ पाते । ये ही लोग अधिक-से-अधिक दुःख भोगकर अंत में कभी-न-कभी सत्य की खोज में ज्ञानी पुरुषों की शरण लेते हैं । ***

सो तेहि मिले न कछु संदेहू

जादू के खेल में जो कुछ भी दिखता है वह सच्चा नहीं होता है। यदि कोई जादू के रुपये एकत्र कर ले तो क्या वे स्थायी रहेंगे ? नहीं। जादू के खेल के सदृश ही यह संसार माया का खेल है। जीव इसे सच्चा मान बैठा है और इसमें उलझ गया है लेकिन जो माया के पदार्थों से प्रेम नहीं करता है, जो इनको 'मेरा' मानकर बँधता नहीं है, प्रभु से प्रभु को ही चाहता है, उन्हें प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो उठता है, रोता है, उसे स्वयं प्रभु मिल जाते हैं।

एक राजा था। एक बार किसी कार्यवश वह विदेश गया। उसे वहाँ बहुत समय तक रहना पड़ा। रानियों को जब पता चला कि राजा जिस देश में हैं वहाँ बहुत अच्छी-अच्छी वस्तुएँ मिलती हैं तो सभीने राजा को पत्र लिखा। जिसे जो पसंद था उसने वह माँगा। सभी रानियों ने नाना प्रकार की वस्तुएँ लिखीं पर सबसे छोटी रानी ने लिखा कि 'मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। मुझे तो बस आप ही को पाने की इच्छा है।'

राजा ने सभी रानियों के पत्र पढ़े। उनकी याचनाओं के अनुसार वस्तुएँ मँगवायीं। घर आकर सभी रानियों को उनकी मनपसंद वस्तु भिजवा दी। जिस रानी ने लिखा था कि 'मैं केवल आप ही को चाहती हूँ', राजा उसके पास स्वयं गया तथा ढेर सारे उपहार भी साथ ले गया। यह देख अन्य रानियों को बहुत ईर्ष्या हुई। सभीने महाराज से शिकायत की : "महाराज ! हमलोगों ने ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि आप हमारे यहाँ नहीं आये ? हमें केवल एक ही वस्तु दी गयी जबकि इस रानी को आपने बहुत-सी वस्तुएँ दीं । ऐसा क्यों ?"

महाराज ने उत्तर दिया : "तुम अपने-अपने प्रार्थना-पत्र देखो । जिसने जो चाहा उसे वही मिला।" इसी प्रकार माया के इस खेल में जो मनुष्य जिस वस्तु की भगवान से याचना करता है उसको परमेश्वर वही वस्तु देते हैं। माया के खिलौने न चाहकर जो उन मायापति को ही चाहता है उसे वे ही प्राप्त होते हैं। भगवान उसे अपना सर्वस्व दे देते हैं। इसलिए हमें सांसारिक वस्तुओं की कामना त्यागकर भगवान के लिए ही भगवान की भक्ति करनी चाहिए । ❐

विनोद में वेदांत

(विद्यालयों के छोटे-छोटे बालक पूज्य बापूजी के दर्शन-सत्संग का लाभ लेने आये हैं । पूज्यश्री उन्हें 'गीता' का ऊँचा ज्ञान हँसते-हँसाते बालकों में बालक-सा बनकर सरल भाषा में समझा रहे हैं :)

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

(भगवद्गीता : २.२०)

शरीर तो जन्मता-मरता है लेकिन इस शरीर को चलानेवाला आत्मा यानी शरीरी जन्मता भी नहीं और मरता भी नहीं । यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला नहीं है क्योंकि यह जन्मरहित है; शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता । यह नित्य-निरंतर रहनेवाला अर्थात् शाश्वत और पुरातन माने अनादि है ।

एक होता है शरीर, दूसरा होता है शरीरी यानी शरीरवाला । एक होता है खेत, दूसरा होता है खेतवाला । एक होती है दुकान, दूसरा होता है दुकानवाला । एक होता है गुब्बारा, दूसरा होता है गुब्बारेवाला । गुब्बारा फूटने से गुब्बारेवाला मरता है क्या ? नहीं । ऐसे ही यह शरीर है गुब्बारा और शरीरवाला- आत्मा है गुब्बारेवाला । भगवान बोलते हैं : यह शरीरवाला जो है, वह हम हैं । शरीर हमारा है, हम शरीरवाले ! दाढ़ी हमारी है, हम दाढ़ीवाले ! है न ? बच्चों को समझ में आता है न ? 'गीता' का ज्ञान कितना सरल है !

(सभी बच्चे एक स्वर में 'हाँ !' बोलते हैं ।)

तो बाल-दाढ़ी कटने से हम कटते हैं क्या ? हमारी धोती, हम धोतीवाले । धोती फट जाय, जल जाय तो हम फटते, जलते हैं क्या ?... नहीं । ऐसे ही यह शरीर है, इसका जन्म होता है, फिर यह बढ़ता है, जीर्ण-शीर्ण होता है, बीमार होता है और मर जाता है परंतु शरीर का जो आत्मा है (जो हम हैं) उसका (हमारा) जन्म नहीं होता । हम तो इस शरीर में आये उसके पहले भी थे, शरीर है तब भी हैं और शरीर मरने के बाद भी रहते हैं । मरने के बाद अगर हम नहीं रहते तो पुण्य-पाप का फल कैसे मिलता ?

जब बच्चा पैदा होता है- जन्मता है, उसकी कुण्डली बनती है लेकिन वह कब आया माँ की गोद में ? कब जन्म हुआ ? बोले, जब बाहर आया पेट से । माँ के पेट में कब आया ? नौ महीने पहले माँ के पेट में आया था । तो नौ महीने पहले कहीं था न ? माँ के पेट में आने के पहले बाप के पेट में था और बाप के पेट में आया उसके पहले अन्न में था । अन्न में आया उसके पहले चन्द्रमा की किरणों में था, जल की बूँदों में था । तो जन्म कबसे माना ? कभी-कभी तो कई लोग जीव माँ के पेट में जब आया उस समय के अनुसार भी जन्मकुण्डली बनाते हैं ।

यह जन्मकुण्डली तुम्हारी नहीं शरीर की बनती है और 'मोहन, सोहन, राधा, कमला...' जो भी नाम हो, यह तुम्हारा नहीं, तुम्हारे शरीर का नाम है, है न ? लेकिन रोज-रोज सुन के लगता है कि मेरा नाम है ।

गर्मी में चमड़ी जरा काली देखते हैं तो बोलते हैं : 'मैं काली हो गयी, काला हो गया ।' काली तो होती है चमड़ी और बोलते हैं : 'मैं काला हो गया ।'

फिर सर्दी आती है, चमड़ी का रंग जरा खुलता है तो बोले : 'मैं गोरा हो गया।' तुम काले-गोरे नहीं हुए, चमड़ी काली-गोरी हुई । है न ? लेकिन बेवकूफी से मानते हैं, मैं काला-गोरा हुआ।

ऐसे ही सर्दियों में शरीर मोटा हुआ, बोले : 'मैं मोटा हो गया।' मोटा तो शरीर हुआ न ! तुम थोड़े ही मोटे हुए ? फिर बोले : 'मैं दुबला हो गया।' तुम दुबले भी नहीं होते और मोटे भी नहीं होते, तुम काले भी नहीं होते और गोरे भी नहीं होते, तुम बीमार भी नहीं होते और तंदुरुस्त भी नहीं होते हो । बीमार होता है तो शरीर और तंदुरुस्त भी होता है तो शरीर ही। दुःख होता है तो मन को होता है, सुख होता है तो मन को होता है किंतु अज्ञान के वातावरण में पैदा होते हैं और अज्ञान के वातावरण में पढ़ते-लिखते हैं, अज्ञान के वातावरण में ही जीते हैं तो अज्ञानी होकर जन्मते हैं तथा अज्ञानी होकर मरते हैं । दुनिया भर का ज्ञान खोपड़ी में भरते हैं पर आत्मा का ज्ञान नहीं पाते। जिससे सारा ज्ञान प्रकाशित होता है, उस आत्मा का ज्ञान भगवान श्रीकृष्ण की वाणी से मिलता है।

न जायते म्रियते वा कदाचित्... तुम कभी जन्मते भी नहीं हो और कभी मरते भी नहीं हो। जन्मता और मरता तो शरीर ही है। बीमार कौन पड़ता है ?... शरीर । थकान किसको लगती है ?... शरीर को और चिंता किसको होती है ?... मन को । दुःख किसको होता है ?... मन को। रोग किसको होता है ? शरीर या मन को। लेकिन तुम अपने आत्मा को नहीं जानते इसलिए शरीर के रोग को अपना मानते हो तो रोग गहरा हो जाता है । मन के दुःख को अपना दुःख मानते हो तो दुःख गहरा हो जाता है । बुद्धि के राग-द्वेष को अपना राग-द्वेष मानते हो तो राग-द्वेष गहरा हो जाता है।

भूख और प्यास किसको लगती है ? शरीर को लेकिन शरीर को भूख-प्यास तब लगती है जब उसमें प्राण होते हैं। वास्तव में शरीर को भूख-प्यास नहीं लगती, प्राणों को भूख-प्यास लगती है। अगर शरीर को भूख-प्यास लगती होती तो मरने के बाद भी शरीर पड़ा रहता है, फिर क्यों भूख-प्यास नहीं लगती ? बोले : उसमें प्राण नहीं हैं। तो भूख-प्यास किसको लगती है ? प्राणों को।

जवानी में प्राण धमाधम चलते हैं तो भूख ज्यादा लगती है। जो खूब काम करते हैं उनकी प्राणशक्ति ज्यादा खर्च होती है तो उनको भूख ज्यादा लगती है। जो बैठे रहते हैं या ध्यानयोग, समाधि में रहते हैं उनको भूख कम लगती है । प्राण ज्यादा चलते हैं तो ज्यादा भूख, कम चलते हैं तो कम भूख। दौड़ते हैं तो भूख लगती है न थोड़ी देर में ? (बच्चे : 'हाँ !') कुश्ती-कसरत या इधर-उधर धमाधमी करते हो तो बोलते हो : 'भूख लगी है।'

तो भूख लगती है प्राणों को और जन्म होता है शरीर का। शरीर और प्राणों के मेल को बोलते हैं जन्म। शरीर को बोलते हैं पिण्ड और पिण्ड में जब प्राण मिलते हैं तो होता है जन्म । पिण्ड को जब प्राण छोड़ देते हैं तो होती है मृत्यु ।

आत्मा - माने जहाँ से 'मैं' उठता है। 'मैं' तो बोलते हो न ?

'कौन है ?' 'मैं हूँ।' 'पर तू कौन ?' 'मैं मोहन'। 'अरे हाँ ! पहचाना-पहचाना...।' लेकिन मोहन तो नाम है। तू कौन ? 'मैं' जहाँ से उत्पन्न होता है वह तो शुद्ध आत्मा है, वही तुम हो । मोहन तो तुम सुनकर अपनेको मान लेते हो। 'मैं मोहन, मैं सोहन, मैं गोविन्द, मैं गोपाल, मैं गोबर गणेश' - यह सुन-सुनकर मानते हैं न ? जिसका नाम अभी मोहन है वह जन्मा उस वक्त उसका नाम सोहन रखते तो वह अपनेको सोहन मानता।

राधा बहन का नाम उस समय पार्वती रखते तो अभी अपनेको पार्वती मानती । जो नाम रख दिया गया, सुन-सुन के अपनेको वही मानते हैं तो वह नाम पक्का हो जाता है । उस नाम को याद रखना तथा 'मैं' मानना यह मन का स्वभाव है और मन को सत्ता मिलती है आत्मा से । तो मैं जन्मता नहीं, मैं मरता नहीं । शरीर के हनन (मारे जाने) से मेरा हनन नहीं होता । बालकपना, किशोरपना, यौवन, वृद्धपना और मृत्यु - ये अवस्थाएँ शरीर की होती हैं । ये आयीं-चली गयीं, फिर भी इनको देखनेवाला तो वही-का-वही है । बूढ़ा बोलता है कि मैं जवान था तो ऐसा था, बालक था तो ऐसा था, किशोर था तो एक बार ऐसा किया था । किशोरावस्था चली गयी, शिशु-अवस्था चली गयी, दुःख की-सुख की अवस्था चली गयी फिर भी वही-का-वही है बुढ़ापे में ।

जब मैं छोटा था न, तो हमारे विद्यालय में एक शिक्षक हमें संगीत सिखाते थे । एक बालगीत हमसे गवाते थे । वे शिक्षक कहाँ गये क्या पता ? और हमारी पाँच-छः वर्ष की उम्र से अब तक शरीर के कितने कण बदल गये, अस्थियाँ, मन-बुद्धि बदल गये फिर भी मैं जानता हूँ कि मुझे संगीत शिक्षक ने यह गीत सिखाया था । अब वह गाना गानेवाला शरीर नहीं रहा, मन भी नहीं रहा, बालकबुद्धि नहीं रही लेकिन तब गाने की सत्ता देनेवाला साक्षी आत्मा तो मैं वही हूँ । इसलिए तो याद रहा । इसलिए अपनेको शरीर मानना और डरते रहना यह मूर्खों का काम है । अपनेको आत्मा मानना और अमर आत्मा की यात्रा करना यह बुद्धिमानों का काम है । आत्मा को जानकर मुक्त हो जाना यह साधकों का काम है । इस उम्र में अगर बच्चों को 'गीता' का ज्ञान मिल जाय तो बच्चे अपने कुल-खानदान में सबसे निराले होंगे, तेजस्वी होंगे, निर्भीक होंगे । □

५ वर्ष के बालक ने चलायी जोखिम भरी सड़कों पर कार !

''मैंने २५ अप्रैल २००५ को पूज्य बापूजी से 'सारस्वत्य मंत्र' की दीक्षा ली थी । जब मैं पूजा करता हूँ, बापूजी मेरी तरफ पलकें झपकाते हैं । मैं बापूजी से बातें करता हूँ । बापूजी के पास मैं रोज दस माला करता हूँ । जो मैं बापूजी से माँगता हूँ, वह मुझे मिल जाता है । मुझे हमेशा ऐसा एहसास होता है जैसे कि बापूजी मेरे साथ हैं । जब मैं पूजा करता हूँ, बापूजी मेरे से बातें करते हैं ।

५ जुलाई को मैं अपने दोस्तों के साथ खेल रहा था । मेरा छोटा भाई हिमांशु छत से नीचे गिर गया । उस समय हमारे घर में कोई बड़ा नहीं था । इसलिए हम सब बच्चे डर गये । इतने में पूज्य बापूजी की आवाज आयी कि 'तांशु ! इसे वैन में लिटा और वैन चलाकर हॉस्पिटल ले जा ।' उसके बाद मैंने अपनी दीदियों की मदद से हिमांशु को वैन में लिटाया । गाड़ी कैसे चली और अस्पताल तक कैसे पहुँची, मुझे नहीं पता । मुझे रास्ते भर ऐसा एहसास रहा कि बापूजी मेरे साथ बैठे हैं और गाड़ी चलवा रहे हैं ।'' (घर से अस्पताल का अंतर १० कि.मी. से अधिक है।)

- तांशु बेसोया, राजवीर कॉलोनी, दिल्ली-९६.

(पृष्ठ २३ 'ब्रह्मनिष्ठ संत श्री आसारामजी बापू का संदेश' का शेष) अतः हमारे छात्र-छात्राओं को ब्रह्मचर्य में प्रशिक्षित करने के लिए उन्हें यौन-स्वास्थ्य, आरोग्यशास्त्र, दीर्घायु-प्राप्ति के उपाय व कामवासना नियंत्रित करने की विधि का स्पष्ट ज्ञान प्रदान करना हम सबका अनिवार्य कर्तव्य है । इसकी अवहेलना करना हमारे देश व समाज के हित में नहीं है । यौवन की सुरक्षा से ही सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण हो सकता है ।

(आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'युवाधन सुरक्षा' से) □

विद्यार्थियों, माता-पिता-अभिभावकों व राष्ट्र के कर्णधारों के नाम

ब्रह्मनिष्ठ संत श्री आसारामजी बापू का संदेश

हमारे देश का भविष्य हमारी युवा पीढ़ी पर निर्भर है किंतु उचित मार्गदर्शन के अभाव में वह आज गुमराह हो रही है । पाश्चात्य भोगवादी सभ्यता के दुष्प्रभाव से उसके यौवन का ह्रास होता जा रहा है। विभिन्न पत्रिकाओं और समाचार पत्रों के द्वारा तथाकथित पाश्चात्य मनोविज्ञान से प्रभावित मनोचिकित्सक व 'सैक्सोलॉजिस्ट' युवा छात्र-छात्राओं को चरित्र, संयम और नैतिकता से भ्रष्ट कर रहे हैं ।

ब्रितानी औपनिवेशिक संस्कृति की देन इस वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में जीवन के नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीनता बरती गयी है । फलतः आज के विद्यार्थी का जीवन कौमार्यावस्था से ही विलासी और असंयमी हो जाता है ।

पाश्चात्य आचार-व्यवहार के अंधानुकरण से युवानों में जो फैशनपरस्ती, अशुद्ध आहार-विहार के सेवन की प्रवृत्ति, कुसंग, अभद्रता, चलचित्र-प्रेम आदि बढ़ रहे हैं उनसे दिनोंदिन उनका पतन होता जा रहा है। वे निर्बल और कामी बनते जा रहे हैं। उनकी इस अवदशा को देखकर ऐसा लगता है कि वे संयमी जीवन की, ब्रह्मचर्य की महिमा से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। लाखों नहीं, करोड़ों-करोड़ों छात्र-छात्राएँ अज्ञानतावश अपने तन-मन के मूल ऊर्जा-स्रोत का व्यर्थ में क्षय कर पूरा जीवन दीनता-हीनता-दुर्बलता में तबाह कर देते हैं और सामाजिक अपयश के भय से मन-ही-मन कष्ट झेलते रहते हैं। इससे उनका शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य चौपट हो जाता है और सामान्य शारीरिक-मानसिक विकास भी नहीं हो पाता। ऐसे युवक-युवतियाँ रक्ताल्पता, विस्मरण तथा दुर्बलता से पीड़ित रहते हैं ।

यही वजह है कि हमारे देश में औषधालयों, चिकित्सालयों, हजारों प्रकार की एलोपैथिक दवाइयों, इंजेक्शनों आदि की लगातार वृद्धि होती जा रही है । असंख्य डॉक्टरों ने अपनी-अपनी दुकानें खोल रखी हैं, फिर भी रोग एवं रोगियों की संख्या बढ़ती ही जा रही है । इसका मूल कारण क्या है ? दुर्व्यसन तथा अनैतिक, अप्राकृतिक एवं अमर्यादित मैथुन द्वारा वीर्य की क्षति ! इसकी कमी से रोगप्रतिकारक शक्ति घटती है, जीवनशक्ति का ह्रास होता है। इस देश को यदि जगद्गुरु के पद पर आसीन होना है, विश्व-सभ्यता एवं विश्व-संस्कृति का सिरमौर बनना है, उन्नत स्थान फिर से प्राप्त करना है तो यहाँ की संतानों को चाहिए कि वे संयम के महत्त्व को समझें और सतत सावधान रहकर सख्ती से इसका पालन करें ।

ब्रह्मचर्य के द्वारा ही हमारी युवा पीढ़ी अपने व्यक्तित्व का संतुलित एवं श्रेष्ठतर विकास कर सकती है । ब्रह्मचर्य के पालन से बुद्धि कुशाग्र बनती है, रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ती है तथा महान-से-महान लक्ष्य निर्धारित करने एवं उसे सम्पादित करने का उत्साह उभरता है, संकल्प में दृढ़ता आती है, मनोबल पुष्ट होता है। आध्यात्मिक विकास का मूल भी ब्रह्मचर्य ही है। हमारा देश औद्योगिक, तकनीकी और आर्थिक क्षेत्र में चाहे कितना भी विकास कर ले, समृद्धि प्राप्त कर ले फिर भी यदि युवाधन की सुरक्षा न हो पायी तो यह भौतिक विकास अंत में महाविनाश की ओर ही ले जायेगा क्योंकि संयम, सदाचार आदि के परिपालन से ही कोई भी सामाजिक व्यवस्था सुचारु रूप से चल सकती है । भारत का सर्वांगीण विकास सच्चरित्र एवं संयमी युवाधन पर ही आधारित है । (शेष पृष्ठ २२ पर)

सर्वोपरि व परम हितकर...

(गतांक से आगे)

वह यह कि जो मनुष्य अन्य मनुष्यों से किसी प्रकार का संबंध नहीं रखता, वह भी अविलम्ब परम कल्याण प्राप्त करने का पात्र हो जाता है। कल्याण-मार्ग के पथिक को उचित है कि वह किसी भी प्राणी को मन, वचन और कर्म से न सताये। समस्त लोगों के साथ मित्रता रखे, पापीजनों के प्रति उदासीन भाव रखे। मानव-शरीर पाकर किसीसे वैर न करे। परमार्थी, ज्ञाननिष्ठ और जितेन्द्रिय पुरुष को धन का त्याग करना चाहिए। उसे तो पूर्णरूप से संतोषी बन आशा और चपलता को सर्वथा त्याग देना चाहिए। हे वत्स ! यदि तुम सर्वोपरि कल्याण चाहते हो तो उपार्जन और संचय को त्यागकर जितेन्द्रिय बनो और जन्म-जन्मान्तरों में निर्भय कर देनेवाले शोकनाशक ज्ञान-मार्ग पर आरूढ़ हो जाओ।

जो मनुष्य अहंकार एवं ममता की सूक्ष्म वासनाओं सहित भोग-राग को त्याग देते हैं, वे फिर किसी बात का दुःख नहीं करते। अतः कल्याण-मार्ग के पथिक को चाहिए कि वह भोगों को त्याग दे। हे सौम्य शुकदेव ! तुम भोगों का त्याग करके ही सांसारिक दुःखों और तापों से छूट सकते हो। जिस प्रकार एकात्मदर्शी पुरुष के शोक और मोह की निवृत्ति हो जाती है, उसी प्रकार वैराग्य उत्पन्न होने पर भी शोक व मोह की निवृत्ति हो जाती है, यही उत्तम सुख है और यही कल्याण का मार्ग है।

परमार्थी मनुष्य को अथवा कल्याण-मार्ग के बटोही को अपने शरीर और इन्द्रियों को वश में कर लेना चाहिए। उसे मौन रहना चाहिए और मन को काबू में कर लेना चाहिए। उसे नित्य तप करना चाहिए। जिस इन्द्रिय को न जीत पाया हो, मन की चंचलता का दमन कर उसे जीतने की इच्छा और उद्योग करना चाहिए। किसीमें किसी प्रकार की आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। ज्ञानी, महात्मा आदि प्रतिष्ठित व्यक्ति कहलाने में हर्ष मानकर आसक्त नहीं होना चाहिए। एकमात्र परमात्मविचार में सदा तत्पर रहने से अविलम्ब अत्युत्तम सुख मिलता है। सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि द्वन्द्वों में रमण करनेवाले प्राणियों में जो मनुष्य मुनिरूप से हर्ष-शोकरहित होकर विचरण करता है, उसको तुम तृप्त हुआ जानो। ज्ञानतृप्त का लक्षण यही है कि वह कभी शोक नहीं करता।

शुभ पुण्यप्रद कर्मों को करने से और ऐसे कर्मों की अधिकता से देवयोनि प्राप्त होती है। जब पाप और पुण्य समान होते हैं, तब प्राणी को मानव-शरीर मिलता है, अशुभ या पाप कर्मों के बढ़ जाने से पशु आदि नारकीय योनियों में जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार अपने शुभाशुभ कर्मों के प्रभाव से मृत्यु, वृद्धावस्था और रोगादिजन्य सैकड़ों उपद्रवों से व्याकुल प्राणी संसाररूप कड़ाहे में डालकर उबाला जाता है। संसार की ऐसी भयंकर दशा को देखकर भी हे शुकदेव ! तुम सचेत क्यों नहीं हो जाते ? जब सहस्रों दुःख-सुख चारों ओर से घेरते चले आते हैं, तब भी तुम इस सांसारिक मायारूपी भूल में क्यों पड़े हो ?

(क्रमशः) ❑

संतों एवं दुष्टों के लक्षण

भगवान श्री रामजी ने भरतजी से कहा : ''हे भाई ! संतों के लक्षण (गुण) असंख्य हैं, जो वेद और पुराणों में प्रसिद्ध हैं।

संत विषयों में लम्पट (लिप्त) नहीं होते, शील और सद्गुणों की खान होते हैं। उन्हें पराया दुःख देखकर दुःख और सुख देखकर सुख होता है। वे (सबमें, सर्वत्र, सब समय) समता रखते हैं, उनके मन में कोई उनका शत्रु नहीं है। वे मद से रहित और वैराग्यवान होते हैं तथा लोभ, क्रोध, हर्ष और भय का त्याग किये हुए रहते हैं।

उनका चित्त बड़ा कोमल होता है। वे दीनों पर दया करते हैं तथा मन, वचन और कर्म से मेरी निष्कपट (विशुद्ध) भक्ति करते हैं। सबको सम्मान देते हैं पर स्वयं मानरहित होते हैं। हे भरत ! संतजन मेरे प्राणों के समान हैं।

उनको कोई कामना नहीं होती । वे मेरे नाम के परायण होते हैं। शांति, वैराग्य, विनय और प्रसन्नता के घर होते हैं। उनमें शीतलता, सरलता, सबके प्रति मित्रभाव और ब्राह्मण के चरणों में प्रीति होती है, जो धर्मों को उत्पन्न करनेवाली है।

हे तात ! ये सब लक्षण जिसके हृदय में बसते हों, उसको सदा सच्चा संत जानना । जो शम (मन के निग्रह), दम (इन्द्रियों के निग्रह), नियम और नीति से कभी विचलित नहीं होते तथा मुख से कभी कठोर वचन नहीं बोलते । जिनके लिए निन्दा और स्तुति (बड़ाई) दोनों समान हैं और मेरे चरणकमलों में जिनकी ममता है, वे गुणों के धाम और सुख की राशि संतजन मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं।

अब असंतों (दुष्टों) का स्वभाव सुनो, कभी भूलकर भी उनकी संगति नहीं करनी चाहिए। उनका संग सदा दुःख देनेवाला होता है। जैसे, हरहाई (बुरी जाति की) गाय कपिला (सीधी और दुधार) गाय को अपने संग से नष्ट कर डालती है।

दुष्टों के हृदय में बहुत अधिक संताप रहता है। वे परायी सम्पत्ति (सुख) देखकर सदा जलते रहते हैं। वे जहाँ कहीं निन्दा सुन पाते हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं मानो रास्ते में पड़ी निधि (खजाना) पा ली हो।

वे काम, क्रोध, मद और लोभ के परायण तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं। वे बिना ही कारण सब किसीसे वैर किया करते हैं। जो भलाई करता है उसके साथ भी बुराई करते हैं।

झूठइ लेना झूठइ देना।
झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा ।
खाइ महा अहि हृदय कठोरा ॥

उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही भोजन होता है और झूठा ही चबेना होता है अर्थात् वे लेने-देने के व्यवहार में झूठ का आश्रय लेकर दूसरों का हक मार लेते हैं अथवा झूठी डींग हाँका करते हैं कि हमने लाखों रुपये ले लिये, करोड़ों का दान कर दिया। इसी प्रकार खाते हैं चने की रोटी और कहते हैं कि आज खूब माल खाकर आये अथवा चबेना चबाकर रह जाते हैं और कहते हैं कि हमें बढ़िया भोजन से वैराग्य

है इत्यादि। मतलब यह कि वे सभी बातों में झूठ ही बोला करते हैं। जैसे मोर (बहुत मीठा बोलता है परंतु उस) का हृदय ऐसा कठोर होता है कि वह महान विषैले साँपों को भी खा जाता है, वैसे ही वे भी ऊपर से मीठे वचन बोलते हैं (परंतु हृदय के बड़े ही निर्दयी होते हैं।)

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद ॥

वे दूसरों से द्रोह करते हैं और परायी स्त्री, पराये धन तथा परायी निन्दा में आसक्त रहते हैं। वे पामर और पापमय मनुष्य नर शरीर धारण किये हुए राक्षस ही हैं।

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन।
सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न ॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई।
स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥

लोभ ही उनका ओढ़ना और लोभ ही बिछौना होता है (अर्थात् लोभ ही से वे सदा घिरे हुए रहते हैं)। वे पशुओं के समान आहार और मैथुन के ही परायण होते हैं, उन्हें यमपुर का भय नहीं लगता। यदि किसीकी बड़ाई सुन पाते हैं तो वे ऐसी (दुःख भरी) साँस लेते हैं मानो उन्हें जूड़ी (जाड़ा देकर आनेवाला ज्वर) आ गयी हो और जब किसीकी विपत्ति देखते हैं, तब ऐसे सुखी होते हैं मानो जगत भर के राजा हो गये हों। वे स्वार्थपरायण, परिवारवालों के विरोधी, काम और लोभ के कारण लम्पट तथा अत्यंत क्रोधी होते हैं।

मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं।
आपु गए अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोह बस द्रोह परावा।
संत संग हरि कथा न भावा ॥

वे माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण किसीको नहीं मानते। आप तो नष्ट हुए ही रहते हैं, (साथ ही अपने संग से) दूसरों को भी नष्ट करते हैं। मोहवश दूसरों से द्रोह करते हैं। उन्हें न संतों का संग अच्छा लगता है, न भगवान की कथा ही सुहाती है।

वे अवगुणों के समुद्र, मन्दबुद्धि, कामी (रागयुक्त), वेदों के निन्दक और जबरदस्ती पराये धन के स्वामी (लूटनेवाले) होते हैं। वे दूसरों से द्रोह तो करते ही हैं परंतु ब्राह्मण-द्रोह विशेषता से करते हैं। उनके हृदय में दम्भ और कपट भरा रहता है परंतु वे (ऊपर से) सुन्दर वेष धारण किये रहते हैं।

ऐसे नीच और दुष्ट मनुष्य सत्ययुग एवं त्रेता में नहीं होते। द्वापर में थोड़े-से होंगे और कलियुग में तो इनके झुंड-के-झुंड होंगे।

हे भाई ! दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुःख पहुँचाने के समान कोई नीचता (पाप) नहीं है। हे तात ! समस्त पुराणों और वेदों का यह निर्णय (निश्चित सिद्धांत) मैंने तुमसे कहा है, इस बात को पंडित लोग जानते हैं।'' ❑

पारिवारिक शांति के लिए

जीवन में अथवा परिवार के सदस्यों में झगड़े होते हों तो परिवार का मुख्य व्यक्ति रात्रि को अपने पलंग के नीचे एक लोटा पानी रख दे और सुबह गुरुमंत्र अथवा भगवन्नाम का उच्चारण करके वह जल पीपल को चढ़ाये। इससे पारिवारिक कलह दूर होंगे, घर में शांति होगी। - पूज्य बापूजी

***

रोपणात् पालनात् सेकाद्ध्यानस्पर्शनकीर्तनात्।
तुलसी दहते पापं नृणां जन्मार्जितं खग ॥

'तुलसी का वृक्ष लगाने, पालन करने, सींचने, ध्यान-स्पर्श और गुणगान करने से मनुष्यों के पूर्व जन्मार्जित पाप जलकर विनष्ट हो जाते हैं।' (गरुड़ पुराण, धर्म कांड-प्रेतकल्प : ३८.११)

सुप्तवज्रासन

स्वास्थ्यप्राप्ति के तीन उपाय हैं- दैवी, मानवीय तथा राक्षसी । आसन-जप, दैव, गुरुदेव आदि की कृपा से जो उपचार किये जायें वे वैदिक उपाय हैं । वैद्य, डॉक्टर आदि की सलाह से किये गये मानवीय उपचार और जीव-जंतुओं को मारकर जानवरों के अंगों से बननेवाले इन्जेक्शन, ऑपरेशन आदि राक्षसी उपाय हैं ।

इस आसन के अभ्यास से शरीर वज्र के समान मजबूत हो जाता है और यह आसन लेटकर किया जाता है, इसलिए इसे 'सुप्तवज्रासन' कहा गया है । इसके अभ्यास से -

१. सबसे विशेष लाभ यह होता है कि अकेला यह आसन अँगूठे से सिरपर्यन्त रक्त का संचार करके सम्पूर्ण शरीर को मजबूत बना देता है।

२. शरीर की थकान दूर होती है। मेरुदण्ड व कमर लचीले होते हैं तथा सीना चौड़ा होता है ।

३. मस्तिष्क-नियंत्रण में काफी मदद मिलती है ।

४. बहत्तर हजार नाड़ियों का केन्द्र जो नाभि-स्थान है वह भी ठीक रहता है ।

५. सुषुम्ना का मार्ग अत्यंत सरल होता है । कुंडलिनी शक्ति सरलता से ऊर्ध्वगमन करती है । इस आसन में ध्यान करने से मेरुदंड को सीधा रखने का श्रम नहीं करना पड़ता और उसे आराम मिलता है ।

६. सभी अंतःस्रावी ग्रन्थियों को पुष्टि मिलती है, जिससे शारीरिक व आध्यात्मिक विकास सरल हो जाता है ।

७. जठराग्नि प्रदीप्त होकर मलावरोध की पीड़ा दूर होती है । धातुक्षय, पक्षाघात, क्षय, पथरी, बहरापन, तोतलापन, आँखों व स्मरणशक्ति की दुर्बलता आदि रोग दूर होते हैं।

८. कमर, घुटनों आदि के दर्द में लाभ होता है ।

९. श्वास-संबंधित बीमारियों में बहुत ही लाभ होता है ।

१०. टॉन्सिल्स आदि गले के समस्त रोग दूर होते हैं ।

११. बचपन से ही इसका अभ्यास किया जाय तो दमे की बीमारी नहीं हो सकती ।

१२. पेट, कमर, नितम्ब का मोटापा कम होता है और शरीर आकर्षक बनता है।

१३. पसीने की दुर्गन्ध दूर होती है ।

विधि : वज्रासन में बैठकर हाथों का सहारा लेकर कमर के ऊपरी भाग को पीछे की ओर झुकाते हुए सिर को जमीन से लगा दें । फिर दोनों हाथों को दोनों जंघाओं पर रखें (देखें चित्र १) । अधिक अभ्यास होने पर पीठ को जमीन से लगायें व हाथों को मोड़कर सिर के नीचे रखें (देखें चित्र २) ।
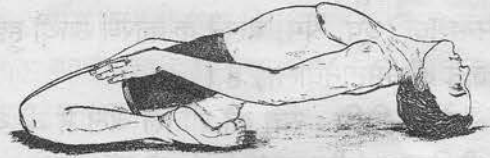
चित्र १

चित्र २

श्वास : धीमी और गहरी लेनी चाहिए ।

सावधानी : रीढ़ के निचले भाग के रोगी तथा हड्डी की टी.बी. से पीड़ित व्यक्तियों को बिना किसी जानकार से पूछे इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए । ❑

ग्रीष्म ऋतु के लिए विशेष

छः ऋतुओं में शरीर को सर्वाधिक दुर्बल बनानेवाली ऋतु है - ग्रीष्म ऋतु। ग्रीष्म में आनेवाली दुर्बलता, रुक्षता व जलीय अंश की कमी की पूर्ति के लिए स्निग्ध, शीतल, तरल व मधुर पदार्थों का सेवन करना चाहिए। इसके लिए सत्तू अत्युत्तम है। जौ को भूनकर चक्की में पीसकर सत्तू बनाया जाता है। चने को भूनकर, छिलके अलग करके चौथाई भाग भूने हुए जौ उसमें मिलाकर बनाया गया सत्तू विशेष लाभदायक होता है। इसी प्रकार चावल तथा गेहूँ का भी सत्तू बना सकते हैं। सत्तू मधुर, शीतल, बलदायक, कफ-पित्तनाशक, भूख व प्यास मिटानेवाला तथा श्रमनाशक (धूप, श्रम, चलने के कारण आयी हुई थकान को मिटानेवाला) है।

सेवन विधि : सत्तू को शीतल जल में घी व मिश्री मिलाकर पीना चाहिए। केवल जल के साथ, गर्म करके, भोजन के बाद, रात्रि के समय, दिन में दो बार सत्तू नहीं पीना चाहिए। घी न हो तो केवल मिश्री मिलाकर भी ले सकते हैं।

अष्टांगसंग्रहकार वाग्भटाचार्यजी ने ग्रीष्म में बल की रक्षा हेतु एक पौष्टिक पेय बताया है जिसका नाम है 'पंचसार'। पंचसार बनाने के लिए मुनक्का, फालसा, खजूर, शहद व मिश्री को मिट्टी के बर्तन में चार गुना ठंडे पानी में भिगोकर रखें। एक घंटे बाद हाथ से मसलकर छान लें तथा हो सके तो मिट्टी के कुल्हड़ अथवा कसोरे में लेकर पीयें। यह शीघ्र शक्ति, स्फूर्ति व ठंडक देनेवाला है।

गर्मियों में गुड़ का पानी भी खूब फायदेमंद है। गुड़ को एक घंटा पानी में भिगोकर पीने से गर्मी का प्रतिकार करने की क्षमता आती है।

इन दिनों में चावल की खीर, श्रीखंड, कच्चे आम का पना, कोकम, गुलाब, आँवले का शरबत, ठंडाई का सेवन करना चाहिए।

वाग्भटाचार्यजी के अनुसार गर्मी के दिनों में रात को चंद्रमा व तारों द्वारा शीतल किया गया, मिश्री मिला हुआ भैंस का दूध पीना चाहिए। (ग्रीष्म ऋतु में छाछ निषिद्ध है। फिर भी पीनी हो तो मिश्री, धनिया व जीरा मिलाकर कम मात्रा में लें।)

***

दूध, दही व घी : गुण तथा कर्म

पृथ्वी का अमृत : गाय का दूध

जन्म से ही दुग्धपान का अभ्यास होने के कारण दूध सभीके लिए अनुकूल व सर्वदा पथ्यकर है। अपने मधुर, स्निग्ध, शीतल, मृदु, प्रसन्न आदि ओजतुल्य गुणों से यह ओज, बल, वीर्य, मेधाशक्ति व बुद्धि की वृद्धि करता है। दूध अत्यन्त वाजीकर अर्थात् शुक्रधातु की शीघ्र वृद्धि करनेवाला है। यह आयुष्य को स्थिर रखकर अकाल वृद्धत्व व व्याधियों को दूर रखता है।

अन्य प्राणियों की अपेक्षा गाय का दूध सत्त्वगुणबहुल, पवित्र, सुपाच्य, हृदय व आँखों के लिए विशेष हितकर व जीवन शक्ति प्रदान करनेवाले द्रव्यों में सबसे श्रेष्ठ है।

गाय का रंग, दूध दुहने का समय, दुग्धपान का समय आदि के अनुसार गौदुग्ध के गुण व कार्यों में विविधता पायी जाती है।

गाय के रंग के अनुसार दूध के गुण :

सफेद गाय : वात-पित्तशामक, कफकारक।

पीली गाय : वात-पित्तशामक।

लाल व चितकबरी गाय : वातनाशक।

काली गाय : वातनाशक, अन्य गायों की अपेक्षा अधिक गुणकारी।

बाखली (बकेन) गाय[1] : त्रिदोषशामक।

हाल की ब्याई हुई अर्थात् छोटे बछड़ेवाली तथा जिसके बच्चे मर गये हैं ऐसी गायों का दूध त्रिदोषप्रकोपक व हानिकारक होता है।

दुहने के समय के अनुसार दूध के गुण :

प्रातःकाल का दुहा हुआ : रात्रि में चंद्रमा की किरणों के कारण अधिक शीतल, पित्तशामक व भारी।

सायंकाल का दुहा हुआ : दिन में सूर्य की किरणों व गाय के भ्रमण के कारण प्रातः की अपेक्षा हलका व विशेष कफ-वातनाशक।

धारोष्ण (दुहने के तुरंत बाद का गुनगुना) दूध : अमृत के समान गुणयुक्त, अत्यन्त सुपाच्य, जठराग्निप्रदीपक, त्रिदोषनाशक, मेध्य व शीघ्र बलदायक।

दुग्धपान के समयानुसार दूध के गुण :

सुबह का दुग्धपान : वीर्यवर्धक।

मध्याह्न का दुग्धपान : बलकारक।

रात्रि में दुग्धपान : श्रमनाशक, दिन में सेवन किये अन्न से उत्पन्न दोषों का शमन करनेवाला, नेत्रों के लिए विशेष हितकर।

बाल्यावस्था में दुग्धपान : शरीर की वृद्धि करनेवाला।

युवावस्था में दुग्धपान : पित्त का शमन करनेवाला।

वृद्धावस्था में दुग्धपान : शुक्र की रक्षा करनेवाला।

अन्य प्राणियों में भैंस का दूध पचने में भारी, कफवर्धक व निद्राजनक है। बकरी कड़वी-कसैली वनस्पतियाँ खाकर खूब भ्रमण करती है, इसलिए उसका दूध पचने में हलका, त्रिदोषशामक व सर्वरोगनाशक (विशेषतः क्षयरोगनाशक) है।

जीर्णज्वर, मानसिक रोग, हृदयरोग, रक्ताल्पता, रक्तपित्त (मुँह-नाक-योनि आदि से होनेवाला रक्तस्राव), गर्भस्राव, दाह - इन रोगों में तथा बालक, वृद्ध, गर्भिणी, दुर्बल, थके हुए व स्त्री-संपर्क से क्षीण लोगों के लिए दुग्धपान वरदानस्वरूप है।

कफजन्य रोग, चर्मरोग व नये ज्वर में दूध का सेवन निषिद्ध है। ३०० ग्राम दूध में ३०० ग्राम पानी और दो-तीन कालीमिर्च डालकर इतना उबालें कि ३१० ग्राम बचे। यह दूध अधिक सुपाच्य व पित्तशामक है।

दही

ताजा, मधुर व उत्तम रूप से जमा हुआ दही रुचिवर्धक, जठराग्निप्रदीपक, बल, मांस तथा शुक्रवर्धक, वायुनाशक एवं मंगलकारक है। यह उष्ण, पचने में भारी, स्रोतों में अवरोध करनेवाला व कफकारक है। अरुचि, अतिसार व शरीर के कृश होने पर दही का सेवन श्रेष्ठ माना गया है।

गाय का दही- पवित्र व हृदय के लिए हितकर है।

भैंस का दही- वातपित्तशामक व बलवर्धक है।

बकरी का दही- सुपाच्य, त्रिदोषशामक व क्षयरोगनाशक है।

गाय का दही सबसे श्रेष्ठ है।

दही सेवन-विधि :

उष्ण होने के कारण दही का सेवन शीत व वर्षाऋतु में करना चाहिए।

शीतऋतु में घी के साथ व वर्षा ऋतु में शहद के साथ दही का सेवन करें।

दुर्बल व्यक्ति व वातप्रकृति के लोग घी के साथ, कफप्रकृति के लोग शहद के साथ एवं पित्तप्रकृति के लोग मिश्री तथा आँवले के साथ दही का सेवन करें। इन द्रव्यों को मिलाये बिना केवल दही का सेवन नहीं करना चाहिए।

१. वह गाय या भैंस जिसे ब्याये ५-६ महीने से ऊपर हो चुका हो और जो बराबर दूध देती हो।

दही के प्रतिकूल परिणाम से बचने के लिए दही के साथ मूँग की दाल का सेवन करना चाहिए ।

यदि गाय के दूध को चाँदी के बर्तन में जमाया जाय और गर्भवती महिला को आरम्भ के महीनों में दिया जाय तो उससे गर्भपात नहीं होता । यह अकाल (समय पूर्व) प्रसव से बचाता है । इससे अपंग और मंदबुद्धि संतान उत्पन्न नहीं होती । प्रसव से पहले और प्रसव के दौरान कोई जटिलता नहीं आती । प्रसव सरलता से, स्वाभाविक होता है ।

दही सेवन निषेध :

शरद, ग्रीष्म, वसंत इन उष्ण ऋतुओं में, भाद्रपद महीने में, मंदाग्नि में, कफ-पित्तजन्य विकार, त्वचारोग, ज्वर, अपस्मार व सूजन में दही का सेवन पूर्णतः निषिद्ध है ।

रात के समय दही का सेवन, दही को गर्म करना, व्यंजन पकाते समय उसमें दही मिलाना, ठीक से न जमा हुआ खट्टा व बासी दही सर्वथा त्याज्य है ।

जो दहीप्रिय व्यक्ति विधि-निषेध छोड़कर मनमाने ढंग से दही का सेवन करते हैं उन्हें ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प (हरपिस), कुष्ठ, पाण्डु, भ्रम और पीलिया रोग हो जाते हैं ।

गौघृत

गौघृत अमृत कहा और माना गया है । समस्त ब्रह्माण्ड में गाय का घी ही एकमात्र ऐसी वस्तु है, जिसमें अधिकतम प्राणवायु निर्माणक रसायन रहते हैं । यह बात सिद्ध हो चुकी है कि एक चम्मच गाय के घी को कण्डों की आग में आहुति देने से एक टन से अधिक हितकारी वायु बनती है, जो अन्य किसी भी उपाय से असम्भव है । अतः नियमित रूप से कम-से-कम एक बार रोजाना गाय के घी को सूँघना या आवश्यकता पड़ने पर नाक में डालना चाहिए । कंडे पर धूप करना अपने लिए और मानवता के लिए अति उत्तम होगा । ❒

'ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि

होलिकोत्सव, दिल्ली, १९ व २० मार्च : दिल्लीवासियों को पहली बार पूज्य बापूजी के सान्निध्य में होलिकोत्सव का लाभ मिला । रोहिणी के 'स्वर्ण जयंती पार्क' मैदान में हुए इस अभूतपूर्व महोत्सव में पूज्य बापूजी ने होली का आध्यात्मिक रहस्य बताते हुए कहा : ''प्रह्लाद अर्थात् राग-द्वेष-अहंता छोड़कर विशेष आह्लादित, प्रसन्न रहनेवाला । भक्त प्रह्लाद की तरह सब परिस्थितियों में सम, प्रसन्न और ईश्वर के रंग में रँगे रहने का संदेश देता है होलिकोत्सव महापर्व ।''

जहाँ प्राकृतिक रंगों की फुहार स्वास्थ्य एवं शीतलता की वर्षा कर रही थी, वहीं ब्रह्मवेत्ता पूज्य बापूजी की दृष्टि अमृतवर्षा कर रही थी । दिल्लीवासियों ने इस महोत्सव में आधिभौतिक रंग (पलाश), आधिदैविक रंग (आंतरिक शांति) व आध्यात्मिक रंग (आत्मज्ञान का सत्संग) - तीनों का एक साथ लाभ लिया । वे लोग धनभागी हैं ।

होली ध्यानयोग शिविर, सूरत (गुज.), २१ से २३ मार्च : सूरत के प्राकृतिक व सुरम्य वातावरण में हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी होली पर्व पर ध्यानयोग शिविर सम्पन्न हुआ । पूज्य बापूजी के होनेमात्र से साधकों के जीवन में अमृतवेलाएँ स्वतः प्रकट होने लगती हैं। जिस प्रकार बच्चों की उन्नति के लिए माँ नयी-नयी युक्तियाँ खोजती है, नये-नये व्यंजन बनाती है उसी प्रकार पूज्यश्री विश्वमानव को तन से स्वस्थ, मन से प्रसन्न व मति से परमात्मा में प्रतिष्ठित बनाने के लिए युक्तियाँ खोजते रहते हैं। पूज्यश्री ने साधकों के मन की गुत्थियों एवं शंकाओं को

प्रश्नोत्तर के माध्यम से सुलझाया ।

पूज्य बापूजी ने २० मार्च की शाम को व्यासपीठ पर पधारते ही शिविरार्थियों से प्रश्न किया : ''गरीब-से-गरीब और अमीर-से-अमीर सबके लिए जो दुर्लभ नहीं है, न दूर है, जो मरने के बाद भी साथ नहीं छोड़ती, जो निकट-से-निकट है, ऐसी कौन-सी चीज है ?''

भक्तों-साधकों ने इस प्रश्न के कई उत्तर दिये । अंत में पूज्यश्री ने जो मर्मभेदी उत्तर दिया वह 'होली ध्यानयोग शिविर, सूरत' भाग-१ में अवश्य देखें ।

आश्रम में १ लाख ५० हजार लीटर जल में पलाश के फूल, गुलाबजल, केवड़े के फूल व गंगाजल मिलाकर निर्मित किये गये प्राकृतिक रंग से पूर्णिमा व धुलेंडी के दो दिन स्वास्थ्यप्रद व सुखद वर्षा के बीच होली खेली गयी । रासायनिक रंगों से खेली गयी होली से तो स्वास्थ्य बिगड़ता है, मन अशांत होता है, झगड़े तक हो जाते हैं, जबकि पूज्य बापूजी के सान्निध्य में मनायी गयी होली शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रसन्नता, आह्लाद, शांति और ऐसी अलौकिक तृप्ति प्रदान करती है जो ग्वाल-गोपों को भगवान श्री कृष्ण के संग होली खेलने में मिलती थी ।

आज भारतवर्ष में ही नहीं समस्त विश्व में अन्यत्र कहीं ऐसी विलक्षण एवं प्राकृतिक होली खिलायी जाती हो, ऐसा देखने-सुनने में न आया है और न आ सकता है ।

पुण्यभूमि भारत में सूर्यपुत्री तापी नदी का पावन तट... श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष पूज्य बापूजी का सान्निध्य... और उसमें भी एक साथ लाखों भक्तों को प्राकृतिक रंग द्वारा पूज्यश्री के करकमलों से रँगने का महान अवसर... होली के दिन ऐसी अनोखी त्रिवेणी और कहाँ उपलब्ध होगी ? पहले ही दिन भक्तों का सैलाब देखकर सब दंग रह गये थे लेकिन धुलेंडी के दिन तो अरा... रा... रा... क्या कहना ! पहले दिन की अपेक्षा भी अधिक प्रभुप्रेमी, गुरुभक्तों का दरिया उमड़ पड़ा । सचमुच वे लोग धन्य हैं जो भगवद्भाव, संतदर्शन से पुलकित, आह्लादित, स्नेही होते हैं । इन्हें देखकर शिवजी के वे वचन याद आते हैं : **धन्या माता पिता धन्यो...** इस दुर्लभ संयोग का बहुत सारे चैनलों ने जीवंत प्रसारण किया । आश्रमों व समितियों के सेवाकेन्द्रों पर यह 'होली ध्यानयोग शिविर' सी.डी. भाग -३ व ७ नाम से उपलब्ध है । इनको अवश्य देखना-सुनना चाहिए, जिससे भक्तिरस, ज्ञान-प्रकाश और स्वस्थ जीवन की सुवास से आपका घर व आस-पड़ोस महक जाय ।

चेटीचंड ध्यानयोग शिविर, अमदावाद आश्रम, ४ से ७ अप्रैल : महापुरुषों के दैवी कार्यों को विघ्न-बाधाएँ रोक सकें यह संभव ही नहीं है। इस शिविर के प्रथम दिन ही आयी तेज वर्षा व तूफान के कारण नदीतट पर बना अस्थायी पंडाल बैठ गया लेकिन पूज्य बापूजी के सत्संग-सान्निध्य में आनंदित साधकों के दिल में न कोई शिकवा था न चेहरे पर शिकन ! उत्साही साधक सेवकों ने हरि ॐ... हरि ॐ... उच्चारण करते हुए देखते-ही-देखते पंडाल को फिर से यथावत् खड़ा कर दिया । शाम को पूज्य बापूजी ने आश्रम के सत्संग भवन में शिविरार्थियों की तितिक्षा को देख 'वास्तविक विश्राम कैसे पाया जाय ? भगवद्रस कैसे पाया जाय ?' ऐसे दुर्लभ रहस्यों को उजागर किया।

मौन के आध्यात्मिक लाभ, ध्यान में प्रवेश की कुंजियाँ, योग में आगे बढ़ने के उपाय, शरणागति का रहस्य - इन सबका निचोड़ रहा 'चेटीचंड ध्यानयोग शिविर' ।

प्राकृतिक क्रियाओं से लेकर मानव-जीवन तक सभीमें मौन की महिमा पूज्यश्री के वचनामृत में उजागर हुई : ''मौन की बड़ी आवश्यकता है । मौन का फायदा ले के बहुत सारी समस्याओं का समाधान और बहुत सारी उपलब्धियों को हस्तगत किया जा सकता है ।

पुष्प मौन होकर सुगंधि देते हैं । वृक्ष भी मौन

होकर अपनी जड़ें मजबूत करते हैं। आकाश भी मौन होकर सबको ठौर देता है। धरती मौन से ही सारे चक्र चलाती रहती है और पोसती रहती है। आपके अंदर की क्रियाएँ भी जब आप चुप होते हैं तभी सुचारु होती हैं। बीमारी आ जाय, अस्वस्थता आ जाय तो वैद्य की सलाह से थोड़ा अल्पाहार अथवा उपवास करें और मौन रहें। इससे लोग दवाइयों की अपेक्षा भी वैसे ही जल्दी चंगे होते देखे गये।

मौन से शक्ति का संचय करो। वाणी को व्यर्थ न जाने दो। ४० दिन अगर मौन साधना करते हैं तो आपकी समस्याएँ तो चली ही जायेंगी, आपकी सलाह से दूसरों की भी समस्या मिट सकती है ऐसी शक्ति जागृत होती है।''

पूज्य बापूजी ने जीवन में श्रद्धा का महत्त्व बताते हुए कहा कि ''दुनिया तार्किकों के बल से नहीं चलती, डण्डेबाजों के बल से नहीं चलती, दुनिया चलती है श्रद्धालुओं के बल से। अच्छी-अच्छी संस्थाएँ भी श्रद्धालुओं के बल से चलती हैं। मंदिर, मसजिद भी श्रद्धालुओं के बल से चलते हैं। परिवार भी श्रद्धालुओं के बल से ही चलता है, तर्क के बल से नहीं चलता और जीवन में निखार भी श्रद्धा के बल से होता है।''

चैत्र की गर्मी में भी भक्तों के अन्दर जो विश्रांति की ठंडक थी, जो ज्ञान की मस्ती थी, जो योग का बल था उनके आगे सब मुसीबतें बौनी हो गयी थीं। पूज्य बापूजी ने साधकों को ज्ञानसंयुक्त प्राणायाम सिखाकर उनका योगमार्ग में प्रवेश सरल कर दिया।

अंतिम दिन शिविरार्थियों को पूज्यश्री द्वारा स्वास्थ्यवर्धक आँवला चूर्ण व भूख बढ़ानेवाली आयुर्वेदिक टॉफियों के पैकेट निःशुल्क प्रदान किये गये। सिंधी समाज के सज्जनों ने चेटीचंड का उत्सव आश्रम में खूब उमंगपूर्वक मनाया। 'बाल संस्कार केन्द्र' के बच्चों द्वारा 'श्री झुलेलाल अवतरण-दिवस' पर सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न किया गया।

सागर (म.प्र.), १२ व १३ अप्रैल : 'रामनवमी' का पुनीत पर्व इस वर्ष सागरवासियों की झोली में रहा। रोम-रोम में रमे अन्तर्यामी राम पर प्रकाश डालते हुए पूज्य बापूजी ने कहा : ''जिस नित्यानंदस्वरूप, अनंत चिन्मात्र परमात्मा में योगी महापुरुष रमण करते हैं वह परब्रह्म सत्ता श्रीराम है। रोम-रोम में जो चैतन्य तत्त्व रम रहा है, जो तुम्हारे मन को देख रहा है, वह साक्षी, चैतन्य राम तुम्हारा आत्मा है। इधर-उधर भटकते हुए मन को बार-बार रामतत्त्व में लाओ।''

यहाँ बहुगुणसम्पन्न आँवले के शरबत व सिर को धूप से बचाने के लिए टोपियों का प्रसादरूप में निःशुल्क वितरण किया गया।

पूनम दर्शन कार्यक्रम १९ अप्रैल को अमदावाद तथा २० अप्रैल को फरीदाबाद-दिल्ली की झोली में रहा। परदुःखकातर व परोपकारी बापूजी ने अपनेको कष्ट देकर भी हजारों-हजारों पूनम व्रतधारी साधकों के कष्टों को हरा। 'हनुमान जयंती' के अवसर पर पूनम व्रतधारियों को मौनव्रत और मारुतिनंदन के मौन की महत्ता बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''मारुति मौन सेवक हैं। उनमें 'रुति' (शब्द) का अभाव ही है। ऐसा भी कह सकते हैं कि उनकी रुति में मा यानी प्रमा अर्थात् यथार्थ अनुभव भरपूर है। उनकी रुति यानी वाणी माँ सीता की वाणी है। उनकी वाणी में परा, पश्यन्ती का सौन्दर्य वैखरी में भी उतरता है। भगवान श्रीरामचन्द्र ने स्वयं उनके वाक्य-विन्यास की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।''

मौन पर और प्रकाश डालते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''आप सब भी कम बोलें, सारगर्भित बोलें, सुमधुर और हित से भरा बोलें। शास्त्रसम्मत, हनुमानजी की नाईं सुंदर बोल बोलें अथवा मौन रहें। मानवी शक्तियों को हरनेवाली निंदा, ईर्ष्या, चुगली, झूठ, कपट इन गंदी आदतों से बचें और मारुतिनंदन के मौन और सारगर्भितता का सेवन करें।'' ❑

1 May 2008
RNP. NO. GAMC 1132/2006-08
WPP LIC NO. GUJ-207/2006-08
RNI NO. 48873/91
DL(C)-01/1130/2006-08
WPP LIC NO.U(C)-232/2006-08
G2/MH/MR-NW-57/2006-08
WPP LIC NO. MH/MR/14/07-08
'D' NO. MR/TECH/47-4/2008

Posting at Rishi Prasad PSO between 25th of preceding month to 10th of current month. Back issue at PSO-AHD * Posting at ND. PSO on 5th & 6th of E.M. * Posting at MBI Patrika Chanel on 9th & 10th of E.M.

आरा, जि. भोजपुर (बिहार) के गरीबों में साड़ी एवं धोती वितरण तथा जम्मू (जम्मू-कश्मीर) के साधु समाज में भंडारे का आयोजन।

सोलापुर (महा.) तथा सम्बलपुर (उड़ीसा) में पूज्य बापूजी के शिष्यों ने निकाली संकीर्तन यात्राएँ।